सिडबी
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

संकल्प

त्रैमासिक हिंदी पत्रिका
जनवरी-मार्च 2016

सिडबी को सम्मान

भारतीय साहित्याकाश के चमकते सितारे विशेषांक-2

संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उप समिति द्वारा नई दिल्ली क्षेत्रीय कार्यालय का राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी निरीक्षण

भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, वित्तीय सेवाएँ विभाग द्वारा पुणे में दिनांक 3 एवं 4 जून 2016 को आयोजित राजभाषा सम्मेलन के दौरान भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के सचिव श्री अनूप कुमार श्रीवास्तव द्वारा सिडबी की पत्रिका 'संकल्प' के नए अंक का विमोचन

सिडबी
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

संकल्प

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक का
हिन्दी त्रैमासिक
(निजी वितरण के लिए)
वर्ष 20 : अंक 77
जनवरी-मार्च, 2016

प्रधान संपादक
एस. रामकृष्णन

संपादक
अनिता सचदेवा

परामर्श
एस. आर. निमेष
अविनाश कुमार

सहयोग
डॉ. रामवृक्ष सिंह
राकेश कुमार उज्ज्वल
उपेन्द्र नाथ त्रिपाठी
शशिधर पुरोहित
प्रवीण भारद्वाज

●

श्री एस. रामकृष्णन
द्वारा
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक,
प्रधान कार्यालय
सिडबी टावर, 15, अशोक मार्ग,
लखनऊ-226 001
के लिए संपादित एवं लखनऊ से प्रकाशित
तथा
माहेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस, मोतीनगर, लखनऊ से मुद्रित।

अनुक्रम

❐ संपादकीय 2

अर्थ-चिन्तन

❐ भारत और आर्थिक वृद्धि दर • डॉ. रमाकांत शर्मा 3

विशेष लेख

❐ मुंशी प्रेमचन्द की साहित्य-साधना एवं हिन्दी-सेवा • डॉ. विनोद चन्द्र पाण्डेय 6
❐ शिवानी, जिन्होंने भारतीय नारी के दर्द को जाना • श्रीमती विमल सिंह 9
❐ सर्जन का रुद्र–महाकाल उग्र • अतुल कुमार रस्तोगी 12
❐ तकषी शिवशंकर पिल्लै • आलोक कुमार चतुर्वेदी 20
❐ बशीर अहमद 'मयूख'-ज़हर के ख़िलाफ़ एक आवाज • शशिधर पुरोहित 22
❐ संवेदना की शिल्पी-अमृता प्रीतम • नरेश कुमार सोलंकी 24
❐ प्रो. अमर्त्य सेन–व्यक्तित्व एवं विचार • सत्य प्रकाश सिंह 28
❐ प्रगतिशील साहित्य के पुरोधा–भीष्म साहनी • सुमन सिंह 32

आलेख

❐ समय-समय की बात • स्वाती आठल्ये, 35

कहानी

❐ स्वर्ग का मार्ग • संजय माहेश्वरी 16
❐ एकलव्य • ललाटेन्दु स्वाईं 36

कविता

❐ पहला प्यार • सुरेन्द्र नाथ कपूर 8
❐ स्वच्छता • अनिल कुमार शर्मा 21
❐ बारिश • संजय शुक्ला 36

गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ 31
पढ़िये और बताइये प्रतियोगिता 23

प्रथम आवरण चित्रः *डॉ. क्षत्रपति शिवाजी, अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक तथा श्रीमती अनिता सचदेवा, महाप्रबंधक (हिन्दी) भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. रघुराम जी राजन से राजभाषा शील्ड ग्रहण करते हुए।*

'संकल्प' में भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक के स्टाफ सदस्यों तथा अन्य लेखकों की सहभागिता रहती है। इसमें प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों और तथ्यों की सत्यता की जिम्मेदारी लेखकों की है। यह आवश्यक नहीं कि संपादक मंडल तथा भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक उनसे सहमत हो।

संपादकीय

प्रिय पाठकगण!

'संकल्प' का 77वाँ अंक हमारे सुधी पाठकों के हाथ में है। यह मेरे लिए बहुत खुशी की बात है। पत्रिका का पिछला अंक 'भारतीय साहित्याकाश के चमकते सितारों' को समर्पित था। हमारा प्रस्तुत अंक इसी सिलसिले की अगली कड़ी है। इस अंक में भी हमने भारतीय साहित्य-जगत को समृद्ध करनेवाले रचनाकारों पर केन्द्रित कुछ चुनिंदा लेख प्रकाशित किए हैं।

इस अंक में हमने जिन महान रचनाकारों को स्मरण किया है उनमें हिन्दी कथा-साहित्य के सिरमौर मुंशी प्रेमचंद, प्रख्यात कथा-लेखिका गौरा पंत 'शिवानी' और पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के साथ-साथ बशीर अहमद 'मयूख' जैसे लेखक भी शामिल हैं। हिन्दी जगत को कुछ बहुत-ही गंभीर रचनाएं देनेवाले बहुमुखी प्रतिभा संपन्न लेखक भीष्म साहनी पर केन्द्रित आलेख भी इस अंक में पाठकों के लिए पुनः छापा जा रहा है। इस अंक में जहाँ एक ओर सुदूर दक्षिण के प्रसिद्ध मलयालम कथाकार श्री तकषी शिवशंकर पिल्लै पर केन्द्रित लेख दिया जा रहा है, वहीं पंजाबी भाषा की मशहूर लेखिका अमृता प्रीतम को भी स्मरण किया गया है।

भारत के साहित्याकाश को कविता, कहानी आदि ललित साहित्य की विधाओं ने ही सुन्दर नहीं बनाया है, बल्कि ज्ञान साहित्य के रचनाकारों ने भी इसके सौन्दर्य को बढ़ाया है। ऐसी ही एक विभूति रहे हैं नोबल पुरस्कार विजेता प्रो. अमर्त्य सेन। उनके व्यक्तित्व एवं विचारों पर रोशनी डालता एक आलेख हमने इस अंक में प्रस्तुत किया है। हमारी संस्था को देश के सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों के संवर्द्धन और विकास के साथ-साथ उसका वित्तपोषण करने का अधिदेश प्राप्त है। साथ ही, ऐसे कार्यों से जुड़ी अन्य संस्थाओं के मध्य समन्वय का दायित्व भी हमें दिया गया है। इसे ध्यान में रखते हुए, हम समय-समय पर भारत के उद्योग-जगत एवं अर्थव्यवस्था से जुड़े आलेख भी 'संकल्प' में समाहित करते आए हैं। उसी क्रम में इस अंक में हमने भारतीय रिजर्व बैंक के अवकाश-प्राप्त महाप्रबन्धक डॉ. रमाकान्त शर्मा के 'भारत और आर्थिक वृद्धि' शीर्षक आलेख की संयोजना की है।

विभिन्न रोचक विषयों पर संक्षिप्त आलेखों, कविताओं, राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियों एवं सचित्र समाचारों के प्रकाशन के जरिए हमने इस अंक को अधिक से अधिक पठनीय, रोचक व सूचनाप्रद बनाने की कोशिश की है। आशा है कि यह अंक भी हमारे पाठकों की रुचि के अनुरूप होगा। हमें आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी, ताकि 'संकल्प' के अगले अंकों को और अधिक पठनीय व रोचक बनाया जा सके।

(एस. रामकृष्णन)

सिडबी
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

भारत और आर्थिक वृद्धि दर

● डॉ. रमाकांत शर्मा
भूतपूर्व महाप्रबंधक (राजभाषा) भारतीय रिजर्व बैंक

किसी देश की आर्थिक वृद्धि दर एक निश्चित अवधि के दौरान यानी एक वर्ष में देश के सकल उत्पादन में होने वाले परिवर्तन को व्यक्त करती है। यदि आर्थिक वृद्धि की वार्षिक दर बढ़ रही होती है तो इसका मतलब अधिक उत्पादन, अधिक रोजगार तथा अधिक खुशहाली के रूप में सामने आता है और इसमें गिरावट होती है तो इसके विपरीत होने वाले परिणाम निश्चित रूप से चिंता को जन्म देते हैं।

आर्थिक वृद्धि की माप अक्सर वास्तविक सकल घरेलू उत्पादन या रियल जीडीपी में होने वाली प्रतिशत वृद्धि के रूप में की जाती है। रियल जीडीपी में किसी एक वर्ष में देश में उत्पादित समस्त वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य को विचार में लिया जाता है। मुद्राप्रसार के प्रभाव को इसमें शामिल नहीं किया जाता। इसे एक उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। यदि 2014 के 500 अरब रुपये के सकल घरेलू उत्पादन की तुलना में वर्ष 2015 का सकल घरेलू उत्पादन बढ़ कर 510 अरब रुपये का हो जाता है तो इसका मतलब यह हुआ कि इसमें 10 अरब रुपये की या 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसे यूं भी कहा जा सकता है कि 2015 में आर्थिक वृद्धि दर 2 प्रतिशत रही। इसी प्रकार, यदि वर्ष 2016 में सकल घरेलू उत्पादन और बढ़ कर 530 अरब रुपये का हो जाता है तो 2016 की आर्थिक वृद्धि दर 3.92 प्रतिशत होगी।

भारत में जीडीपी की वृद्धि दर को प्रभावित करने वाले मुख्य तीन क्षेत्र अर्थात् कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र का जीडीपी में योगदान क्रमशः 17 प्रतिशत, 29 प्रतिशत और 54 प्रतिशत है। जीडीपी में सेवा क्षेत्र का सर्वाधिक योगदान स्पष्टतः देखा जा सकता है। लेकिन, जहां तक रोजगार का सवाल है, सबसे ज्यादा रोजगार कृषि क्षेत्र ने ही दिया हुआ है।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया जो न तो पूरी तरह से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है और न ही समाजवादी। शुरुआत में संरक्षणवाद, लालफीताशाही और लाइसेंसराज, जैसे प्रमुख कारणों से भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर काफी कम बनी रही। अत्यधिक सरकारी नियंत्रण, 97 प्रतिशत तक के भारी कराधान और बढ़ते भ्रष्टाचार ने नए उद्योग-धंधे लगने और पनपने में जो बाधा पहुंचाई उसने पंचवर्षीय योजनाओं से होने वाले लाभों को भी सीमित कर दिया। संरक्षणवाद की नीति ने विदेशी निवेश को तो हतोत्साहित किया ही, एकाधिकार की जमीन को खाद-पानी देकर अर्थव्यवस्था को स्वस्थ प्रतियोगिता के लाभों से भी वंचित कर दिया। स्वतंत्रता के बाद के तीन दशकों तक भारत की आर्थिक वृद्धि दर अन्य एशियाई देशों की तुलना में इतनी कम (लगभग 1.5 प्रतिशत) बनी रही कि अर्थशास्त्रियों ने उसे "हिंदू रेट ऑफ ग्रोथ" जैसा नाम देने में भी संकोच नहीं किया।

वर्ष 1991 में जब देश ने भूमंडलीकरण और उदारीकरण की नीति अपनाई तो पूरी अर्थव्यवस्था ने एक नई करवट ली। औसतन 1.63 प्रतिशत रहने वाली जीडीपी वृद्धि दर दिसंबर 2003 में बढ़ कर 5.80 प्रतिशत तक जा पहुंची जो तब तक की सबसे ऊंची दर थी। वर्ष 2007 और 2008 के दौरान तो यह 9.0 से 9.20 प्रतिशत के उच्च स्तर तक जा पहुंची। यह कहा जाने लगा कि इस तीव्र गति से वृद्धिगत अर्थव्यवस्था के बल पर भारत शीघ्र ही विश्व की तीसरी बड़ी शक्ति के रूप में गिना जाने लगेगा। वर्ष 1999 में दुनिया की जानी-मानी रेटिंग कंपनी गोल्डमेन सैक्स (Goldman sachs) ने भारत की विभिन्न अवधियों में 5.3 से 6.1 प्रतिशत की अपेक्षित जीडीपी वृद्धि को विचार में लेते हुए अपनी एक रिपोर्ट में यह अनुमान लगाया था कि भारत वर्ष 2020 तक इटली की अर्थव्यवस्था से और वर्ष 2025 तक जर्मनी, ब्रिटेन और रूस की अर्थव्यवस्था से आगे निकल जाएगा तथा वर्ष 2035 तक जापान को भी पीछे छोड़ते हुए विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। लेकिन, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, वर्ष 2007-2008 के दौरान भारत की वास्तविक जीडीपी वृद्धि दर 9.0 से 9.20 प्रतिशत के उच्च स्तर तक पहुंच गई थी। इस हिसाब से भारत बहुत तेजी से आर्थिक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर हो रहा था।

समस्त विश्व भारत की इस प्रगति को हैरत से देख रहा था कि तभी यह वृद्धि दर कम होने लगी. वर्ष 2011-12 में यह घट कर 6.2 प्रतिशत पर तथा 2012-13 में और घट कर 5 प्रतिशत पर आ गई। इस प्रकार, तीन वर्षों के दौरान जीडीपी वृद्धि दर घट कर आधी रह गई। दिसंबर 2012 को समाप्त तिमाही में तो यह और घट कर 4.7

प्रतिशत ही रह गई। लेकिन, वर्ष 2013-14 में यह 6.9 प्रतिशत हो गई जो भारत सरकार के 6.1 से 6.7 प्रतिशत के बीच रहने के अनुमान से कुछ बेहतर स्थिति थी। लेकिन, प्रश्न यह उठता है कि 9.20 प्रतिशत की उच्च वृद्धि दर हासिल करने के बाद हमारी वास्तविक जीडीपी वृद्धि दर लगातार क्यों गिरती गई है। इसके लिए अनेक कारण गिनाए जा सकते हैं। आइये, हम इसके लिए जिम्मेदार कुछ मुख्य कारणों पर एक नजर डालते हैं।

- **आर्थिक सुधारों की धीमी गति**–वर्ष 1991 में देश में आर्थिक सुधारों की नींव रखी गई थी और उन्हें तेजी से लागू करने के लिए साहसी निर्णय लिये गए थे। इससे भारत की डगमगाती आर्थिक स्थिति पटरी पर आ गई थी। पिछले कुछ वर्षों में आर्थिक सुधारों की गति काफी मंद पड़ गई, जिसके परिणामस्वरूप विदेशी निवेश में कमी आई और इसका दुष्परिणाम जीडीपी में गिरावट के रूप में देखने को मिला।
- **बढ़ती मुद्रास्फीति** – बढ़ती मुद्रास्फीति के दौर ने महंगाई में जबरदस्त इजाफा किया। इससे एक ओर वस्तुओं और सेवाओं की मांग में कमी आई, तो दूसरी ओर उत्पादन के साधन भी महंगे हुए। इसके परिणामस्वरूप विशेषकर औद्योगिक उत्पादन में कमी परिलक्षित हुई।
- **कड़ी (हॉकिश) मौद्रिक नीति** – बढ़ती मुद्रास्फीति पर नियंत्रण पाने के लिए रिजर्व बैंक को अपनी नीतिगत दरों में लगातार वृद्धि करनी पड़ी। इससे जहां बैंकों से ऋण लेना मंहगा हो गया और उत्पादन तथा उससे संबंधित गतिविधियों पर विपरीत असर पड़ा, वहीं विशेषकर रियल्टी क्षेत्र की प्रभावी मांग में भी कमी आई।
- **सरकार के बजट घाटे में वृद्धि** – आर्थिक सुधारों को आगे बढ़ाने संबंधी निर्णय लेने में देरी के कारण, सब्सिडी का भारी बोझ उठाने तथा खर्चों पर नियंत्रण न रख पाने के कारण सरकार के बजट घाटे में लगातार वृद्धि होती रही। इसका परिणाम महंगाई बढ़ने के रूप में सामने आया। महंगाई किसी भी रूप में क्यों न हो, मांग में कमी लाने और उत्पादन लागत में वृद्धि का कारण बनती है।
- **प्राकृतिक आपदाएं** – ग्रीनहाउस गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन के कारण पूरी पृथ्वी गर्म हो रही है और मौसम के मिजाज में भारी बदलाव परिलक्षित हो रहे हैं। ऐसे इलाकों में बाढ़ देखी जा रही है जहां सूखा पड़ता था और सूखे वाली जगहों में बाढ़ की स्थिति देखी जा रही है। बेहद गर्मी और बेहद सर्दी ने लोगों का जीवन दूभर कर दिया है। भूकंप की आवृत्ति और उससे होने वाला विनाश भी पहले की तुलना में बढ़ता जा रहा है। प्राकृतिक आपदाओं में अभूतपूर्व वृद्धि और मौसम के बदलते मिजाज के कारण कृषि और उससे संबंधित कार्यकलापों पर तो बुरा असर पड़ना अवश्यंभावी है ही, आर्थिक गतिविधियों के संचालन में भी बड़ी बाधा उत्पन्न होती है।

> *आर्थिक सुधार अपनाए जाने के बाद हमारी आर्थिक वृद्धि दर में उल्लेखनीय सुधार परिलक्षित हुआ था। इसकी धीमी गति में तेजी लानी होगी। अर्थव्यवस्था को और विनियमित करना होगा। वस्तुओं और सेवा कर जैसे कर क्षेत्रों में सुधारों को लागू करना होगा।*

- **वैश्विक मंदी का प्रभाव** – वैश्वीकरण के इस युग में किसी भी अन्य देश में घटने वाली घटनाओं का असर होना स्वाभाविक है। अमेरिका और यूरोप सहित विश्व के अधिकांश देशों ने हाल ही में भयानक आर्थिक मंदी का दौर देखा है। भारत भी इसके दुष्परिणामों से अछूता नहीं रहा और इससे हमारी जीडीपी की वृद्धि दर पर भी कुछ विपरीत असर पड़ा।
- **निवेश में कमी** – भ्रष्टाचार और घोटालों के निरंतर उद्घाटन ने देशी/विदेशी निवेशकों के विश्वास को प्रभावित किया, इससे निवेश में कमी आई और उत्पादन पर प्रतिकूल असर हुआ।

हमारे देश में गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरी जैसी समस्याएं स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने समय बाद भी शिद्दत से मौजूद हैं। इस संदर्भ में आर्थिक वृद्धि में गिरावट होना नागरिकों के जीवन स्तर को उठाने के प्रयासों को निरर्थक कर सकता है। अतः यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि आर्थिक वृद्धि दर को पटरी पर लाने और उसे बढ़ाने के लिए आर्थिक मुद्दों के संबंध में नया दृष्टिकोण अपनाया जाए। इसमें निम्नलिखित को शामिल किया जा सकता है-

- आर्थिक वृद्धि दर में जो गिरावट दिखाई दी है, वह कृषि, निर्माण और खदान क्षेत्र में खराब प्रदर्शन के कारण हुई है, अतः इन क्षेत्रों में उत्पादन को गति देने के लिए विशेष प्रयास किए जाने होंगे। उदाहरण के लिए, कृषि विपणन के क्षेत्र में सुधारों को गति दी जानी होगी, कोयला क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा लागू करने के लिए त्वरित कदम उठाने होंगे और निर्माण क्षेत्र में निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष उपाय शुरू करने होंगे।
- विशेषकर औद्योगिक उत्पादन को गति देने के लिए मौद्रिक नीति के अंतर्गत कुछ और राहत देकर बैंकों के माध्यम से कम दरों पर ऋण उपलब्ध कराने पर विचार किया जाना चाहिए। ऐसा करते समय यह भी देखना

होगा कि मुद्रास्फीति की दर भी अपेक्षित स्तर पर बनी रहे और बहुत ऊंची न हो। हाल ही में अपनी नीतिगत दरों में कुछ कटौती करके केंद्रीय बैंक ने इस ओर कदम बढ़ाने का संकेत भी दिया है।

- जो परियोजनाएं सरकार/सरकारों के विचाराधीन हैं, उन्हें तत्परता से मंजूरी दी जाए ताकि उत्पादन को गति देने में सहायता मिल सके।
- देश में बुनियादी सुविधाओं में तत्काल निवेश बढ़ाए जाने की जरूरत है। सड़क, रेल, बंदरगाह, बिजली, पानी और आई टी नेटवर्क जैसे बुनियादी साधनों में वृद्धि होने से उद्योग-धंधे विकसित होते हैं, उत्पादन और विपणन में सहायता मिलती है तथा दूर-दराज के क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि होती है। यहां यह उल्लेख किया जाना प्रासंगिक होगा कि रोजगार की वृद्धि से प्रभावी मांग बढ़ने के कारण सभी क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। इसे देखते हुए बुनियादी सुविधाओं के लिए निधियां जुटाने और उनका सही इस्तेमाल करने के लिए उपयुक्त ढांचा विकसित किया जाना समय की मांग है।
- हमारे देश में जनबल की कोई कमी नहीं हैं। उत्पादन के इस प्रचुर साधन की उपलब्धता का लाभ उठाए जाने के लिए ठोस योजनाएं बनाने और उनका सही कार्यान्वयन करने के लिए नई सोच के साथ सकारात्मक पहल की अवश्यकता है। उत्पादक कार्यों के लिए इसका इस्तेमाल करके आर्थिक वृद्धि में आसानी से इजाफा किया जा सकता है। इस संबंध में ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार गारंटी जैसी योजनाओं का बेहतर कार्यान्वयन करना भी जरूरी होगा।
- आर्थिक सुधार अपनाए जाने के बाद हमारी आर्थिक वृद्धि दर में उल्लेखनीय सुधार परिलक्षित हुआ था। इसकी धीमी गति में तेजी लानी होगी। अर्थव्यवस्था को और विनियमित करना होगा। वस्तुओं और सेवा कर जैसे कर क्षेत्रों में सुधारों को लागू करना होगा। नागरिक विमानन और बहुब्रांड रिटेल जैसे क्षेत्र में विदेशी सीधे निवेश संबंधी नीति में सकारात्मक रुख अपनाना होगा। बुनियादी सुविधाओं में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के और भी अच्छे परिणाम सामने आएंगे।
- बढ़ते सरकारी खर्च और राजकोषीय घाटे पर अंकुश लगाना बहुत जरूरी है। ऐसे क्षेत्रों में सरकारी खैरात पर रोक लगानी होगी जहां इसका लाभ गरीबों को नहीं, अमीरों को मिलता हो।
- चालू खाते का घाटा भी सकल घरेलू उत्पादन के 6.7 प्रतिशत के उच्च स्तर पर जा पहुंचा था। यद्यपि पिछली कुछ तिमाहियों में इसमें सकारात्मक परिवर्तन दिखाई दिया है, तथापि इसमें और कमी लाने के लिए गहन प्रयास करने होंगे।
- आर्थिक विकास शिक्षित और स्वस्थ जनता के बल पर ही हो सकता है। यह देखा गया है कि जिन देशों में शिक्षा और स्वास्थ्य का स्तर ऊंचा है, वहां जीडीपी वृद्धि दर भी ऊंची है। अतः इस संबंध में योजनाबद्ध कदम उठाने होंगे।

वर्तमान स्थिति

वर्ष 2014-15 के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था 7.3 प्रतिशत की दर से बढ़ी। यह पिछले कुछ वर्षों के दौरान की गिरती स्थिति में अच्छे सुधार का संकेत है। उत्साहवर्द्धक बात यह है कि विनिर्माण क्षेत्र में भी वृद्धि दिखाई दे रही है जो इस क्षेत्र में 2013-14 में हुई 5.3 प्रतिशत की वृद्धि के मुकाबले वर्ष 2014-15 में 7.1 प्रतिशत रही। इससे रोजगार के अवसरों में भी निश्चित तौर पर वृद्धि होगी।

विश्व में सबसे तेज विकास

- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुमान के अनुसार चालू वित्तीय वर्ष में भारत की अर्थव्यवस्था चीन की अर्थव्यवस्था से आगे निकल जाएगी।
- विश्व बैंक के अनुसार भारत की मजबूत वृद्धि से दक्षिण एशिया विश्व में सबसे तेजी से विकास करने वाला क्षेत्र बन जाएगा। इस क्षेत्र की विकास दर 2016 में 7.1 प्रतिशत रहेगी, जो सामान्य रूप से बढ़ कर 2017 में 7.3 प्रतिशत तक पहुंच जाएगी।

दक्षिण एशिया पर केंद्रित अपनी छमाही रिपोर्ट 'साउथ एशिया इकॉनामिक फोकस' के ताजा संस्करण में विश्व बैंक ने यह कहा है कि इस क्षेत्र में अपनी अर्थव्यवस्था के आकार के आधार पर भारत पूरे क्षेत्र की गति तय करेगा। निवेश-अनुकूल माहौल, कंपनियों के कारोबार की बेहतर वित्तीय स्थिति, मजबूत निजी निवेश और आधारभूत ढांचे पर बढ़ते खर्च के कारण भारत की आर्थिक वृद्धि दर वित्तीय वर्ष 2016 में 7.5 प्रतिशत तथा 2016-17 में बढ़ कर 7.7 प्रतिशत होने की संभावना है।

भारत के मुख्य आर्थिक सलाहकार श्री अरविंद सुब्रमण्यम ने 11 अप्रैल 2016 को वाशिंगटन में आयोजित एक समारोह में कहा है कि सुधार की रफ्तार बरकरार रहे तो भारतीय अर्थव्यवस्था में 8 से 10 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करने की क्षमता है।

यह स्थिति बहुत उत्साहवर्द्धक और प्रोत्साहनकारी है, क्योंकि अभी भी हमारी अर्थव्यवस्था सुधार के चरण में है। सरकार की अच्छी नीतियों और योजनाओं का कुशल कार्यान्वयन हमारी अर्थव्यवस्था की गति को निश्चित तौर पर और बढ़ा सकता है। जरूरत इस बात की है कि आने वाले समय में मानसून अनुकूल रहे और लालफीताशाही तथा भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों को इसमें बाधक नहीं बनने दिया जाए।

❑❑❑

मुंशी प्रेमचन्द की साहित्य-साधना एवं हिन्दी-सेवा

● डॉ. विनोद चन्द्र पाण्डेय

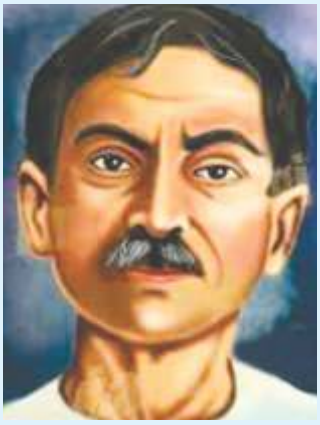

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग गद्य प्रधान युग है। अनेक लेखकों ने गद्य-विधा के विकास में अप्रतिम योगदान किया है। विशेष रूप से निबन्ध, समीक्षा, कहानी, अपन्यास, जीवनी, आत्म-कथा, संस्मरण, यात्रावृत्तांत रेखाचित्र आदि के माध्यम से गद्य-साहित्य को समृद्ध एवं सुसंपन्न किया गया है। आधुनिक युग के कहानीकारों एवं उपन्यासकारों में मुंशी प्रेमचन्द का स्थान सर्वोपरि है। उनकी दीर्घकालीन साहित्य-साधना एवं हिन्दी-सेवा रेखांकित करने योग्य है।

1. जीवन परिचय : मुंशी प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई सन् 1880 ई0 को वाराणसी के लमही नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री अज़ायबराय और माता का नाम आनन्दी देवी था। मुंशी प्रेमचन्द के पिता डाक विभाग में अल्पवेतन पर नौकरी करते थे। प्रेमचन्द जी को बचपन में उनके पिता 'धनपतराय' तथा चाचा 'नवाबराय' कहते थे। जब यह पाँच वर्ष के थे, तब इनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। आरम्भ में उन्हें मौलवी साहब उर्दू-फारसी पढ़ाते रहे। कालान्तर में उन्होंने काशी के क्वींस कॉलेज में प्रवेश लिया। वह पढ़ने-लिखने में तेज थे, अतः उनका शिक्षा-शुल्क माफ था। अन्य शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए उन्हें ट्यूशन करनी पड़ती थी। उन्होंने मैट्रीकुलेशन की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। तदुपरान्त वह इण्टर के लिए हिन्दू कालेज में प्रविष्ट हुए, किन्तु कई बार परीक्षा देने पर भी उत्तीर्ण नहीं हो सके। प्रेमचन्द के मन में पढ़ने की विशेष लालसा थी, किन्तु निर्धनता के कारण वह नियमित शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके। अतः उन्होंने प्रारम्भ में 18 रु0 मासिक वेतन पर चुनार के मिशन स्कूल में अध्यापन-कार्य किया। एक वर्ष पश्चात् बहराइच में वह सरकारी नौकरी करने लगे। बहराइच से प्रतापगढ़ और फिर इलाहाबाद आकर उन्होंने सी.टी. और इण्टर किया। फिर वह शिक्षा-विभाग में ही सब डिप्टी इंस्पेक्टर हो गये। कुछ समय तक इस पद पर कार्य करने के पश्चात् वह बस्ती के राजकीय विद्यालय में अध्यापक हो गये। लगभग एक वर्ष बस्ती में कार्य करने के उपरान्त वह गोरखपुर चले गये और वहीं से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रभावित होने के कारण उन्होंने सरकारी-सेवा से त्याग-पत्र दे दिया। गोरखपुर से वह वारणसी चले आये और अपने ग्राम लमही में रहकर साहित्य-सेवा तथा देश-सेवा करने लग गये। प्रेमचन्द जी का प्रथम विवाह बस्ती के रामापुर ग्राम में हुआ था, किन्तु सन्तोषजनक न होने के कारण उन्होंने फतेहपुर के सलीमपुर ग्राम की विधवा शिवरानी देवी से द्वितीय विवाह कर लिया था, जिनसे दो पुत्र– श्रीपतराय और अमृतराय हुए। प्रेमचन्द जी कुछ समय कानपुर के मारवाड़ी विद्यालय में अध्यापक और प्रधानाध्यापक रहे। बाद में अधिकारियों से न पटने के कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। पुनः काशी आ गये और 'मर्यादा' का सम्पादन करने लगे। तदुपरान्त काशी विद्यापीठ के प्रधानाध्यापक हो गये, किन्तु कुछ समय पश्चात् त्यागपत्र देकर अपने गाँव चले गये। वहाँ से लखनऊ आकर उन्होंने 'माधुरी' पत्रिका का सम्पादन किया। बाद में यह कार्य छोड़कर वह काशी चले आये और अपना प्रेस खोलकर 'हंस' एवं 'जागरण' का सम्पादन करने लगे। बम्बई की एक फिल्म कम्पनी के आमंत्रण पर वह वहाँ गये, किन्तु अस्वस्थ होने पर वापस अपने गाँव लमही चले आये, जहाँ 8 अक्टूबर सन् 1936 ई. को प्रातः 9 बजकर 10 मिनट पर उनका देहावसान हो गया।

2. रचना-संसार : मुंशी प्रेमचन्द ने अपने जीवन-काल में विपुल साहित्य का सृजन किया है, जिसका विवरण इस प्रकार है :

(क) उपन्यास - 1. प्रेमा, 2. वरदान, 3. सेवा-सदन, 4. प्रेमाश्रम, 5. रंगभूमि, 6. काया-कल्प, 7. निर्मला, 8. प्रतिज्ञा, 9. गबन, 10. कर्मभूमि, 11. गोदान, 12. मंगलसूत्र (अपूर्ण)

(ख) कहानी-संग्रह - 1. सप्त सरोज, 2. नवनिधि, 3. प्रेम पचीसी, 4. प्रेम-प्रसून, 5. प्रेम-प्रतिमा, 6. प्रेम द्वादशी, 7. अग्नि समाधि, 8. सप्त-सुमन, 9. समर यात्रा, 10. प्रेम सरोवर, 11. प्रेरणा, 12. नवजीवन, 13. मानसरोवर, 14. कुत्ते की कहानी, 15. कफ़न, 16. बंगाल की कहानियाँ, 17. पाँच फूल।

(ग) नाटक - 1. संग्राम, 2. कर्बला, 3. प्रेम की वेदी, 4. चन्द्रहार (गबन के

आधार पर लिखित नाटक)

(घ) निबन्ध-संग्रह – 1. स्वराज्य के फायदे, 2. कुछ विचार, 3. साहित्य का उद्देश्य।

(ङ) उपन्यास – 1. महात्मा शेख सादी, 2. रामचर्चा, 3. कलम, तलवार और त्याग, 4. दुर्गादास।

(च) सम्पादित ग्रन्थ – 1. मनमोदक, 2. गल्प समुच्चय, 3. गल्परत्न।

3. कथा-साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ – पाश्चात्य विद्वानों ने कथा-साहित्य विशेष रूप से औपन्यासिक-साहित्य की कला की विशेषताओं का वर्णन कुछ प्रमुख तत्वों के आधार पर किया है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासों के प्रमुख तत्वों का विवरण विचारणीय है:–

(क) कथावस्तु : प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथानक यथार्थ की भावभूमि पर आधारित हैं। उन्होंने व्यक्ति, परिवार, समाज, ग्राम, नगर, प्रान्त और देश, सभी का समावेश अपनी कथावस्तु में करने का प्रयास किया है तथा तत्कालीन परिस्थितियों और समस्याओं पर सूक्ष्म दृष्टिपात किया है। उनके कथानकों में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों का सुन्दर सम्मिश्रण अवलोकनीय है। वस्तुतः प्रेमचन्द जीवन के व्यावहारिक पक्ष के आदर्शवादी कथाकार हैं। कथावस्तु के मूलतः दो अंग होते हैं–(1) आधिकरिक और (2) प्रासंगिक। उनके उपन्यासों के आधिकारिक कथानक से जो प्रासंगिक कथाएँ फूट निकली हैं, उनमें से कुछ को उन्होंने सुडौल बना दिया है। कौतूहल और जिज्ञासा की भावना को कथानक का प्राण माना गया है। प्रेमचन्द के कथानक कौतूहल और जिज्ञासा की भावना से युक्त हैं। कथानक के रचना विस्तार में (1) आदि (2) मध्य और (3) अन्त, तीन स्थल महत्वपूर्ण होते हैं। अन्त की दृष्टि से कथानक सुखान्तक अथवा दुखान्तक होते हैं। प्रेमचन्द के प्रायः सभी उपन्यास सुखान्तक है। अतः उनमें तत्सम्बन्धी विशेषताएँ विद्यमान हैं। कथानक की दृष्टि से उनके उपन्यास 'रंगभूमि', 'गबन' और 'गोदान' उच्चकोटि के हैं।

(ख) कथावस्तु : कथोपकथन उपन्यास का वांछनीय और आवश्यक तत्व है। उपन्यासकार को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि संवाद लघु, अभिनयात्मक, सजीव परिस्थिति और पात्र के व्यक्तित्व के अनुरूप, स्वाभाविक, यथार्थ और संयत हों। प्रेमचन्द के उपन्यासों में ये विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। संवाद-लेखन में उन्हें पूर्ण कुशलता प्राप्त है। उनके चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान, अलंकृत, व्यावहारिक संवाद सभी सजीव और प्रभावपूर्ण प्रतीत होते हैं।

(ग) चरित्र-चित्रण : प्रेमचन्द ने पात्रों का चयन यथार्थ जीवन के विभिन्न वर्गों से किया है। उनके पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे पात्रों के चरित्र-चित्रण के अच्छे ज्ञाता रहे हैं, जिसका प्रभाव उनके द्वारा किए गये चरित्र-चित्रण पर पड़ा है। चरित्र-चित्रण में सन्तुलन की विशेषता विद्यमान है। प्रेमचन्द ने अपने पात्रों के चरित्र-विकास में स्वः विश्लेषण और अभिनय, दोनों साधनों का सफल सदुपयोग किया है।

(घ) वातावरण का चित्रण : वातावरण भी उपन्यास का प्रमुख तत्त्व है। प्रेमचन्द ने समयानुकूल, अवसरानूकुल और युगानुरूप वातावरण का चित्रण किया है। वातावरण के चित्रण के मूलतः दो पक्ष होते हैं–1. बाह्य, 2. आन्तरिक।

प्रेमचन्द ने दोनों पक्षों का सफलता-पूर्वक प्रयोग किया है। इसी प्रकार उन्होंने वातावरण के चित्रण में सामान्य और विशेष, दोनों प्रणालियों का आश्रय लिया है। पूर्व-परिस्थिति योजना, प्रकृति-सौन्दर्य, देश-काल-विवेचन द्वारा उन्होंने जिस परिवेश की संरचना की है, वह वातावरण के निर्माण और चित्रण में पूर्णरूपेण सफल है। वातावरण के चित्रण-सम्बन्धी एक गद्यांश उद्धृत है:-

"फाल्गुन का महीना था। अबीर और गुलाल से ज़मीन लाल हो रही थी। कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था। रबी ने खेतों में सुनहरा फर्श बिछा रखा था और खलिहानों में सुनहले महल उठा दिये गये थे।"

(ङ) उद्देश्य : उद्देश्य कथा-साहित्य का एक प्रमुख तत्त्व है। प्रेमचन्द एक आदर्शवादी कथाकार हैं। अतः उनकी कथाओं में कोई न कोई सामाजिक या आर्थिक उद्देश्य उपलब्ध होता है। उन्होंने जनवाद और मानववाद के व्यावहारिक पक्ष को स्वीकार करते हुए उसे एक आदर्श की ओर उन्मुख किया है, यह उनकी प्रमुख विशेषता है। उनका दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है। उन पर आर्य समाज के सन्देशों और गाँधीवाद की नीतियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होंने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की कल्याण-कामना की है। इससे स्पष्ट है कि उनकी रचना-धर्मिता का मुख्य उद्देश्य 'शिव' ही है।

(च) शैली : प्रत्येक लेखक की अपनी एक लेखन-शैली होती है। प्रेमचन्द की भी अपनी एक शैली है। जिसके आधार पर उन्होंने कथा-साहित्य का सृजन किया है। उनकी शैली कथानक, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण और वातावरण के चित्रण में परिलक्षित होती है। शैली पर उपन्यासकार अथवा कथाकार के व्यक्तित्व का भी प्रभाव पड़ता है। प्रेमचन्द ने यथार्थ जीवन की व्याख्या और उस व्याख्या के माध्यम से किसी नैतिक आदर्श की स्थापना का प्रयास किया है। अतः शैली की दृष्टि से भी प्रेमचन्द की कृतियाँ उच्चकोटि की हैं। उनकी शैली को आलोचनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, भावात्मक, परिचयात्मक, अभिनयात्मक, व्यंग्यात्मक कोटियों में विभक्त किया जा सकता है।

(छ) भाषा : प्रेमचन्द ने सरल और

सजीव भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में यत्र-तत्र संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी उपयोग हुआ है। वस्तुतः उनकी भाषा विषय, भाव और विचार के अनुकूल है। उनकी भाषा पात्रानुकूल भी थी। अतः वह गम्भीर भाव गम्भीर भाषा में और सरल भाव सरल भाषा में प्रकट करते थे। उनकी भाषा में आवश्यकतानुसार मुहावरों का भी प्रयोग होता था। उनकी भाषा-शैली मुख्यतः दो रूपों में पाई जाती है–1. सस्कृत-निष्ठ शैली और 2. व्यावहारिक शैली। हम यह भी कह सकते हैं कि उनकी भाषा में सरल शैली और आलंकारिक शैली का उययोग हुआ है। सूक्ति-सम्पन्नता भी उनकी भाषा का प्रमुख गुण हैं। कुछ सूक्तियाँ उद्धृत हैं :-

1. बुढ़ापे में पत्नी का मरना बरसात में घर का गिरना है।

2. कायरता वीरता की भाँति संक्रामक होती है।

3. समय भी उन्हीं के पास होता है जिनके पास धन होता है।

उनकी भाषा का एक स्वरूप प्रस्तुत गद्यांश में अवलोकनीय है :-

''वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम और अनुभूतियों की रचना-शील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।''

4. साहित्यिक योगदान एवं महत्त्व : मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक कहानीकार, एक उपन्यासकार, एक नाटककार, एक पत्रकार और एक निबन्धकार के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की है। गद्य की विविध विधाओं में उनका अवदान प्रशंसनीय है। विशेष रूप से कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में उनकी अमूल्य देन महत्वपूर्ण है। उनके साहित्यिक योगदान और महत्व के सम्बन्ध में एक समीक्षक का मत है :-

''उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, वेशभूषा, रहन-सहन, आशा-निराशा, इच्छा-अनिच्छा, सुख-दुःख, राग-द्वेष और सूझ-बूझ के वे पूर्ण ज्ञाता थे। सर्वत्र उनकी गति थी। जीवन के निम्नतम और उच्चतम, सभी प्राणियों, सभी वर्गों सभी समाजों से उनका सम्बन्ध था। प्रेमचन्द ने कथा-साहित्य को कल्पना-लोक के कृत्रिम वातावरण से निकालकर जीवन की यथार्थ भावभूमि पर खड़ा किया और उसे जीवन की समस्याओं से अनुप्राणित किया। प्रेमचन्द सामाजिक प्राणियों के प्रतिनिधि थे, उन प्राणियों के प्रतिनिधि थे, जो अपने समाज में शताब्दियों से पद-दलित, अपमानित और उपेक्षित थे। वे उस नारी-समाज के वकील थे, जो पर्दे में कैद पद-पद पर लांछित और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हेय समझी जाती थी। वे उन कृषकों की आवाज थे, जो निरीह, निष्प्राण और पूँजीपतियों की वासना के शिकार थे। वे उन श्रमिकों और मजदूरों के हिमायती थे, जो दिन-भर जी-तोड़ परिश्रम करके भी अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट नहीं भर पाते थे। तात्पर्य यह है कि वे हिन्दी के प्रथम साहित्यकार थे, जिन्होंने अपने कथा-साहित्य में पीड़ितों, पतितों, उपेदितों, पददलितों, अशिक्षितों और शोषितों के आँसू पोंछे, उनकी पीठ थपथपाई और उन्हें सहारा दिया। उनका पक्ष लेकर शोषकों, पूँजीपतियों, समाज के पाखण्डी और दम्भी व्यक्तियों, धर्म के ठेकेदारों, राजनीति के झूठे खिलाड़ियों, पुलिस के क्रूर कर्मचारियों आदि के हथकंडों का भण्डाफोड़ किया।'' वे समाज के सुधार, प्रेम के प्रचार, शाश्वत जीवन-मूल्यों और उच्चादर्शों के सबल समर्थक थे। निस्सन्देह मुंशी प्रेमचन्द की साहित्य-साधना एवं हिन्दी-सेवा प्रणम्य है।

(लेखक जाने माने साहित्यकार हैं)

❑❑❑

कविता

पहला प्यार

● सुरेन्द्र नाथ कपूर

सीप-सी पलक कोई,
क्षण भर को झपक जाती है,
फिज़ाओं से तभी नज़्म कोई,
मन में उतर आती है।

रेशमी हवा के झोंके-सा कोई,
पास से गुजरता है,
खिड़की पे उतर बादल,
झिर झिर के बरसता है।

शबनमी बूंदे, पत्तों पे बिखर जाती हैं,
सतरंगी किरणें खिलकर, धुन प्यार की गाती हैं।

कुछ होता है ऐसे पल में,
जो कभी न हुआ हो,
कोई पंख उड़ चला आया,
किसी ने मन को छुआ हो।

अभी मिल के गया है, कुछ दूर का रास्ता है,
फिर भीग गया मन क्यों, क्यों न वक्त खिसकता है।

हर आहट में नज़र,
दरवाज़े पे टिक जाती है,
लगता है नहीं कुछ भी,
न दीप न बाती है।

जब साथ हों, सफ़र तब,
छोटा ही लगता है,
जग सो गया हो, तो फिर क्या,
प्यार तो जगता है।

डगर ख़त्म न हो जाये,
और चलते रहे यूँ ही,
तारों की रोशनी में,
बारात सजे यूँ ही।

जब ऐसा लगे होने, और खुद को लगे खोने,
तो रातें महकती हैं, होते हैं दिन सलोने।

दो नाम हो के गड्डमड्ड,
एक नाम में ढलते हैं,
अमलतास वादियों में,
आँखों में स्वप्न पलते हैं।

❑❑❑

शिवानी, जिन्होंने भारतीय नारी के दर्द को जाना

● श्रीमती विमल सिंह
धर्मपत्नी डॉ. आर. वी. सिंह,
प्रधान कार्यालय, लखनऊ

पिछली शताब्दी के हिन्दी कथा-जगत का पूर्वार्द्ध निर्विवाद रूप में मुंशी प्रेमचंद का है, जबकि उत्तरार्द्ध शिवानी का। गौरा पंत यानी शिवानी का जन्म 1923 में राजकोट में हुआ। लेकिन थीं वे मूलतः कुमाऊँ की। नौ वर्ष शांति निकेतन में रहीं, जहाँ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का शिष्यत्व मिला। साथ ही, सत्यजित राय प्रभृति सहपाठियों का सान्निध्य भी। हिन्दी, संस्कृत और बाँग्ला पर उनका एक समान अधिकार था। शिवानी की रचनाओं में उनका पूरा अनुभव-जन्य संस्कार बार-बार मुखरित हो उठता है।

शिवानी की कहानियों के कथानक और पात्र, दोनों ही जीवन से लिए गए हैं, बिल्कुल हमारे और आपके बीच से। यही नहीं, वे अपने पाठक से निरन्तर संवाद की स्थिति में रहती हैं। उनकी रचनाएँ पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है गोया वे सामने बैठी सुना रही हैं और हम सुन रहे हैं। "शायद" शीर्षक कहानी में पाठकों को संबोधित करती वे कहती हैं "क्षमा कीजिएगा, मैं उसी नौटंकी का उल्लेख करते-करते कथासूत्र की भूमिका ही में उलझकर रह गई।"

कुमाऊँ उनकी रचनाओं में जगह-जगह जीवंत हो उठता है, अपनी पूरी गरिमा के साथ। "कुमाऊँ के पकवान देखने में जितने ही आडम्बरहीन और अनाकर्षक होते हैं, खाने में उतने ही सुस्वादु और मौलिक। उन सरल पकवानों की भूमिका कितनी दुरूह होती है, यह मैं जानती थी।" (सौत) उनके रचना-संसार में उत्तराखंड की लोक-संस्कृति छलक-छलक पड़ती है। उदाहरण के लिए "दो स्मृतिचिह्न" का यह वर्णन देखें–"संक्रांति को अम्मा गुड़ डालकर आटे के गुलगुले, ढाल-तलवार और फुलौ बनाकर घी में तलती। घी में पकते मीठे पकवानों की खुशबू पूरे चौके में फैल जाती। फिर दोनों बहनें बड़े यत्न से उन पकवानों को गूँथ माला बनातीं अनुपस्थित बहनों के नाम की। एक बड़ी दी की, दो उनके बच्चों की, फिर मझली दी की और उनकी पुत्री की, अन्त में स्वयं अपनी। इन्दुली फिर बड़ी बेईमानी से सबसे बड़ी तलवार, गुझिया और संतरा, सब अपनी माला में गूँथ लेती। सुबह उठकर दोनों छत पर चढ़कर एक-एक पकवान का टुकड़ा कौवे को दिखा-दिखा बुलातीं:

ले कौआ फुलौ, मेकें दियै भल भल धुलौ।

(अरे कौवे, ले फुलौ और इसके बदले में मुझे बढ़िया सा दूल्हा ला दे।)

कैसा अजीब पहाड़ी त्योहार था, जब झुण्ड की झुण्ड लाल-लाल गालों वाली, स्वस्थ, सुन्दर पहाड़ी लड़कियाँ फुलौ के पकवान शून्य आकाश में बिखेरतीं, भविष्य के सजीले दूल्हे की कामना करतीं! युग-युगान्तर से कुमाऊँ का आकाश प्रत्येक उत्तरायण को ऐसे ही मधु कलकण्ठ के काक-गान से मधुमय होता रहा है।" (दो स्मृतिचिह्न)।

"पर उसकी भोजन-प्रिया प्रतिवेशिनी को उत्तर देने का अवकाश ही कहाँ था? रायते का डोंगा लगभग साफ कर, वह अब किसी क्षुधाकातर भिक्षुक की भाँति कचौड़ियों के अम्बार पर टूटी।.. मैंने प्रायः ही देखा है कि डाइटिंग के चक्कर में बँधी ये छरहरी आधुनिकाएँ दावतों में, स्वेच्छा से ही जिह्वा पर लगे संयम अंकुश को दूर पटक, भूखे कंगलों की भाँति खाने पर टूट पड़ती हैं।" (सौत)

अपने शब्दों से वे पूरे परिवेश का खाका-सा खींच देती हैं और समूचा बिंब पाठक की आँखों के सामने जीवन्त हो उठता है, उदाहरण के लिए विवाह-स्थल का यह वर्णन देखें–"शामियाना लग गया था, दरियों पर बीसियों दर्जन बच्चे नये-नये कपड़े पहन

गुलांठे खाने लगे थे। हलवाई ने चूल्हे का विधिवत् पूजन कर कढ़ाई चढ़ा दी थी, मैली बनियान को छाती पर चढ़ा, उन्नत उदर खुजाता हृदयपुष्ट हलवाई बमगोले-से बूँदी के लड्डू और ढाल-सी मठरियाँ बनाता, बड़े-से टोकरे में रख रहा था....."

उनके शब्द-विन्यास के विषय में पद्मा सचदेव की यह उक्ति बहुत ही सटीक बैठती है- "शिवानी दिद्दी अपने शब्दों में संस्कृत, उर्दू और कभी-कभी कुमाऊँ का कोई शब्द यूँ इस्तेमाल करतीं जैसे कोई सर्राफ सुंदर मुकुट में हीरे, पन्ने, मोती, मणिक कुशलता से जड़ता है। उनको कोई भी शब्द अखरता न था। हिन्दी में संस्कृत का इस तरह बेजोड़ प्रवाह मैंने कहीं नहीं पढ़ा। गंगा-जमुना मिल जाती थीं, एक- दूसरी को भर लेती थीं बाँहों में।" (इंडिया टुडे, 30 मार्च, 2003)

जीवन, चाहे वह नागर हो अथवा ग्राम्य, शिवानी को उसकी बहुत अच्छी समझ है। जीवन को सांगोपांग समझे बिना किसी भी कहानी अथवा उपन्यास में वह प्रामाणिकता नहीं आ सकती, जो शिवानी के कथा-साहित्य का उपजीव्य है। निसर्गतः उनको प्रकृति की गोद में बसे गाँव अधिक सुहाते हैं। शायद नागर सहजता भी भाती हो, किन्तु फ्लैटों की बौनी दीवारों में कैद जीवन उन्हें बिल्कुल नहीं जँचता। - "देखा नीरा, तुम बहुत भोली हो, फ्लैट का जीवन निश्चय ही कुछ अंशों में मनुष्य के जीवन को अनुभवों से समृद्ध करता है, किन्तु इसके लिए तुम फ्लैटवासियों को अपनी एक बहुमूल्य धरोहर खोनी भी पड़ती है, वह है तुम लोगों की प्राइवेसी! किसी भी परिवार के सुख के लिए इस प्राइवेसी का अक्षुण्ण रहना अनिवार्य होता है। यहाँ तो तुम्हारी एक छींक, खाँसी या डकार पर तुम्हारा अधिकार नहीं रहता, उसी क्षण वह दूसरे परिवार की छींक-खाँसी बन जाती है।" (सौत)

शिवानी की कहानियों में पहाड़ों की सुन्दर, सलोनी, भोली-भाली ललनाएँ हैं, सुसंस्कारी कन्याएँ हैं, पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, अपनी गृहस्थी में बच्चों-कच्चों के बीच रमी, मेदबहुल दोहरे बदन वाली घरेलू स्त्रियाँ हैं, तो रूप-गर्विता मानिनी नायिकाएँ भी हैं।

'मैं' शैली में लिखी होने के कारण उनकी प्रायः सभी कथाकृतियाँ पाठक के मन में एक गहरी प्रतीति जगाती हैं। उसके प्रामाणिक होने का विश्वास जगाती हैं। नारी-मन को शिवानी से बेहतर शायद ही किसी भारतीय लेखिका ने पहचाना हो। उनके प्रायः सभी कथानकों की प्रमुख पात्र नारियाँ ही हैं, नारियाँ जो घर-गृहस्थी में रमी हैं, नारियाँ जो पहाड़ों के स्वच्छ-निर्मल निर्झरों-सी पवित्र और सदैव उत्फुल्ल दिखती हैं, नारियाँ जो गीत गाती हैं, किशोरियाँ जो विवाह के सपने बुनती हैं, सपनों के राजकुमार की तस्वीरें जिनके मोटे-मोटे नयनों में बसती हैं, लड़कियाँ जिनके विवाह की चिन्ता में माँ-बाप अधमरे हुए जाते हैं।

हो भी क्यों नहीं! शिवानी का प्रतिपाद्य आम गृहस्थ का जीवन है, जिसकी धुरी दांपत्य के सुख-दुःख के ताने-बाने पर टिकी है। शिवानी ऐसे जीवन का वर्णन भर करके अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं मान लेतीं, बल्कि सुखद दांपत्य के नुस्खे भी बाँटती चलती हैं। "मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि जो नारी सफाई के पीछे मरी-मिटी जाती है, उसका वैवाहिक जीवन उतना सुखी नहीं हो पाता। जिसका सारा समय यही सोचने में बीत जाता है कि उसकी पलंगों पर बिछे पलंगपोशों की समानान्तर रेखाओं का माप कितने इंच और कितने सेण्टीमीटर की परिधि में बँधा रहना चाहिए या मेज पर सजी पुस्तकों की जिल्दों का रंग कैसे मैच किया जाए कि सुन्दर लगे या बक्से में साड़ियों की तह कैसे पिरामिड के स्तूपाकार गड्ढों में सजाई जाए, उसके पास अपनी गृहस्थी की मुख्य समस्याओं के मनन के लिए कभी-कभी बहुत कम समय रह जाता है। उस नारी का पति कभी तौलिये की लुंगी बांधे कमरों में इधर-उधर नहीं घूम पाता। बिस्तर की सिलवट बिगाड़ने का दुःसाहस करने पर गृहस्थी में तूफान खड़ा हो जाता है। उस गृह के बच्चे सजे-सँवरे गुलदस्तों में बंधे-कटे पुष्प-गुच्छों की ही भाँति सुन्दर, पर निर्जीव लगते हैं। अपने गृह को आवश्यकता से अधिक सज्जा प्रदान करने में कभी-कभी ऐसी कलात्मक रुचि की नारी के हृदय का अन्तरंग कक्ष बिना झाड़ा ही रह जाता है और उसमें प्रयत्न की मकड़ी अपना ताना-बाना बुन लेती है। सज्जा या आर्डर पुरुष का गुण है। इधर-उधर चीजें फेंकने, रुचि से कपड़े न पहनने, दाढ़ी बढ़ा, बीमार मजनूँ की सूरत लिए इधर-उधर घूमने वाला पुरुष जिस लापरवाही से अपने व्यक्तित्व की अवहेलना करता है, उसी लापरवाही से कभी अपने परिवार की भी अवहेलना कर सकता है। स्त्री की जितनी ही अस्त-व्यस्त गृहस्थी होगी, उतना ही सुलझा उसका पारिवारिक जीवन रहेगा।" (तीन कन्या)

विवाह नारी को आमूल-चूल परिवर्तित कर देता है। शिवानी के ही शब्दों में - "विवाह के पश्चात् सुघड़ से सुघड़ नारी भी कितनी बदल जाती है!"

ऐसी ही एक नव-विवाहिता का वर्णन शिवानी ने यहाँ किया है- "उसकी रसिकप्रिया अपनी मीठी हँसी से उसका स्वागत करती और खिड़की से दो मेहँदी रची हथेलियाँ चमकाती दोना थाम लेती। हँसी का स्वर सुनकर ही मुझे लगा था कि इसकी बचकानी खनक और मिठास दोनों ही में सैकरीन की-सी बनावटी मिठास है। निश्चय ही यह सैकरीन छुरी से काटकर मीठा बनाया गया फीका खरबूजा निकलेगा। मेरा अनुमान ठीक था। वह नीचे चहलकदमी करने उतरी तो मुझे

उस मूर्खा पर बेहद तरस आया। ऊँचे जूड़े, ऊँची एड़ी और पेंसिल से उठाई गई ऊँची भवों को लाख ऊँचा उठाने पर भी बेचारी जीवन-भर कभी अपने व्यक्तित्व को ऊँचा नहीं उठा पाएगी।" (शायद)

कुरुचिपूर्ण नारी-व्यवहार शिवानी को नहीं जँचता। वहीं संघर्षरत नारी उनके कथानकों का मूल है, चाहे वह "गहरे पानी पैठ" की उषा बेन हो, "स्वयंसिद्धा" की माधवी या "कृष्णवेणी" की नायिका कृष्णवेणी। उनकी नायिकाएँ जीवन की समस्याओं से जूझती हैं। संघर्ष करती हैं और विजयश्री प्राप्त करती हैं। उन्हें पढ़ते हुए मन में कहीं समानांतर कवीन्द्र रवीन्द्र का यह गीत फलीभूत होता प्रतीत होता है–"आमरा चंचल, आमरा, अद्‌भुत, आमरा जोबोनेरी धुत्त .... झांप दिए .. जूझिए .. पाई कूल ..." शिवानी की नायिकाएँ तूफान से घिरे जीवन में कूद पड़ती हैं और अपनी अदम्य जिजीविषा की पतवार के सहारे किनारा पा ही लेती हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि "मनुष्य स्वयं ही अपने जीवन में अमृत घोलता है और स्वयं ही विष। सृष्टि प्रभु का सुखद विलासमात्र है। फिर भी क्या कारण है, चारों ओर हमें केवल वेदना ही वेदना का साम्राज्य बिखरा दिखता है? क्या अपने अधिकांश छोटे-मोटे दुखों के लिए हम स्वयं ही दोषी नहीं हैं? हम सब यह जानते हैं कि संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं, एक जो अपनी वेदना स्वयं घुटक लेते हैं, दूसरे वे जो उसी वेदना को दिन-रात वमन कर सबकी सहानुभूति बटोरना चाहते हैं।... संक्षेप में लोग दुःख को छूत की बीमारी की भाँति फैलाते चले जाते हैं, कुछ अपने सुख से दूसरों को भी सुख देते हैं।"

मानव-व्यवहार को परखने की शिवानी में विलक्षण क्षमता थी। कस्बेनुमा शहरों में, उनके समकालीन प्रेमीजन किस प्रकार एक-दूसरे को अपने संदेश भेजते और पत्रों का आदान-प्रदान किस प्रकार किया जाता था, इसका यह वर्णन देखने योग्य है।

"... वही मुंडेर, डूबते सूरज की छाया में शमी मंजिल और तुलसी कुटीर की प्रेमपुण्य सलिला का संगम थी। इरफान अहमद चन्नी के पीछे दीवाना था। उसकी सारी चिट्ठियाँ हिना और खस से तर आती थीं। उन्हें सूँघ-सूँघकर किताबों से ढूँढ निकालना सरला के लिए बड़ा आसान होता। इसी से इरफान उन्हें मुंडेर की एक खपरैल के नीचे छिपा जाता। बड़े मामाजी से आबिद चचा की पुरानी मित्रता थी, इसी से मुसलिम परिवार से मिलने-जुलने पर हम पर भी कोई रोक-टोक नहीं थी। इरफान भाई अलीगढ़ युनिवर्सिटी से घर आते, तो बड़ी मामी चौकन्नी होकर चन्नी के पैरों में बेड़ियाँ डाल देतीं।....बात शायद बहुत बढ़ जाती, पर बीच ही में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान ने एक-दूसरे की ओर बड़ी बेरुखी से पीठ फेर ली।" (चन्नी)

भावानुकूल भाषा न हो, तो रस-निष्पत्ति में खलल पड़ता है। शिवानी के साथ ऐसा नहीं है। उनके पास हर भाव के लिए बिल्कुल मुफीद शब्द हैं, गजब की मुहावरेदानी है और सबसे बड़ी बात यह कि शांतिनिकेतन के उर्वर परिवेश ने उनके भाव-संसार के साथ-साथ अभिव्यक्ति पक्ष को भी प्रखर बनाया है। शांतिनिकेतन में गुरुवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का शिष्यत्व उन्हें मिला था। उनके सहपाठियों में दक्षिण भारतीयों की भी पर्याप्य संख्या थी। शिवानी के कथा-साहित्य में इन पात्रों के साथ-साथ बाँग्ला भाषा का संस्कार भी सहज ही झलक-झलक जाता है। उत्तरांचल के संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में जन्मी गौरा पंत को संस्कृत और संस्कृति, दोनों घुट्टी में मिली, फिर शांति निकेतन का उर्वर वातावरण मिला। वैसे ही उत्तम संस्कारों वाले सहपाठी मिले। इन सब कारकों का मणिकांचन योग जब उनकी भावुक लेखकीय प्रतिभा से हुआ, तो एक ऐसा कथा-संसार रचा गया, जो अपूर्व था कथ्य और भाषा-शैली, दोनों ही दृष्टियों से। भाषा के मामले में वे नये प्रयोग करने से भी नहीं कतरातीं, जैसा कि इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है।

"अपनी सामान्य-सी साड़ी के आँचल-सिगनल से चन्नी मुहल्ले-भर के युवकों के हृदय-इंजनों को रोक सकती थी...."(चन्नी)

आज शिवानी हमारे बीच नहीं है। वे 21 मार्च, 2003 के ब्रह्ममुहूर्त में ब्रह्मविलीन हो गयीं। उनकी तीन बेटियों में मझली मृणाल को पूरा हिन्दी जगत जानता है। हिन्दी के बहुत से लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारों को शिवानी की लोकप्रियता पची नहीं, तो वे मुखर अथवा दबे-ढके स्वर में, शिवानी को दोयम दर्जे की कहानी-लेखिका कहते रहे, जो वस्तुतः उनकी मानसिक संकीर्णता का ही परिचायक है। शिवानी ने जिस मर्यादित रूप में भारतीय समाज, मानवीय वृत्तियों और विशेषकर महिलाओं की विविध समस्याओं को अपने कथा साहित्य में उठाया है, वह स्तुत्य है। सहज बोधगम्य होने के कारण वह बौद्धिक जुगाली करने वाले समालोचकों के लिए चाहे बहुत विचारोत्तेजक विमर्श न प्रस्तुत करे, किन्तु जिस प्रकार मध्य वर्गीय हिन्दी पाठकों ने शिवानी को हाथों-हाथ लिया, वह देखने लायक है। हिन्दी जगत में ऐसी प्रतिष्ठा किसी भी अन्य लेखिका की नहीं रही। ऐसा सम्भव हुआ, क्योंकि उन्होंने आम भारतीय नारी के सुख-दुःख का प्रामाणिक आख्यान प्रस्तुत किया। उच्च-मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त बौद्धिक व्यभिचार का वर्णन न करके शिवानी ने आम हिन्दुस्तानी नारी की वेदना को अपना वर्ण्य विषय बनाया। इसी विशेषता ने उन्हें एक ओर साहित्य के तथाकथित मठाधीशों के लिए अपाच्य, असंवेद्य बनाया, वहीं दूसरी ओर आम पाठक का हृदय-हार। शिवानी को हिन्दी जगत लम्बे समय तक स्मरण करेगा।

❑❑❑

सर्जन का रुद्र—महाकाल उग्र

● अतुल कुमार रस्तोगी
मुम्बई कार्यालय

''धूल और गुलाल दोनों उग्र के हाथ देखना है, आज किसका भाग्य किसके साथ''

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ 'उग्र' की भोलेनाथ जैसी औघड़दानी प्रकृति की सटीक बानगी प्रस्तुत करती हैं। सचमुच अद्‌भुत था 'उग्र' का व्यक्तित्व। खुद उनकी एक कहानी का यह वाक्य–''तू कोप कर काल-करताल-क्रीड़ा करने लगे तो यह जमीन पीपल के पत्ते-सी हिल उठे''–उनके व्यक्तित्व और स्वभाव का रूपक प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है। विलक्षण और अलौकिक रचनाकार। जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद के लगभग समकालीन 'उग्र' ने हिन्दी कहानी के आगाज को अपने अनोखे अंदाज से दस्तक ही नहीं दी, बल्कि रचनात्मक नवीनता और वैविध्यपूर्ण शिल्प-सौष्ठव से उसके कलात्मक विकास में एक नूतन आयाम भी जोड़ा। हिन्दी में प्रत्यक्ष राजनीति-विषय-केन्द्रित कहानियाँ 'उग्र' जी की ही देन कही जा सकती हैं।

इनके समय के प्रसाद-प्रेमचंद अगर अपने युग के सूर-तुलसी थे, तो 'उग्र' थे कबीर–स्पष्ट अभिव्यक्ति में, उग्र विचारों में, अद्‌भुत शिल्प-वैविध्य में और यथार्थतः स्वभाव में भी। ''चुभती सरल साहित्यिक भाषा उग्र से अच्छी लिखने वाला हिन्दी में दूसरा नहीं'' (सुधा 1 सितम्बर 1933)। वे शिल्पगत कला के प्रयोग में अगर प्रसाद से होड़ करते मिलते हैं, तो सरल बोलचाल की मुहावरेदार भाषा के धरातल पर प्रेमचन्द से, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय भावनाओं की तीव्रता में प्रसाद से अधिक पैने हैं, तो सामाजिक आडंबरों- विद्रूपताओं, ग्रामीण जीवन की विरूपताओं- विषमताओं और मानव-मन के यथार्थ उद्‌घाटन में प्रेमचन्द से अधिक कटु तथा आक्रामक।

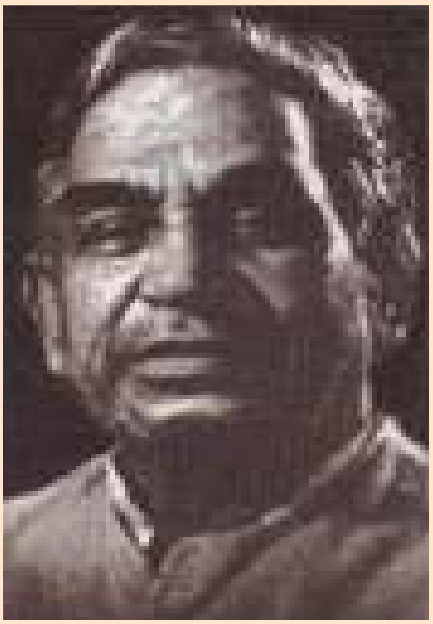

अगर उनके रचना-संसार का फलक प्रेमचन्द की तरह व्यापक नहीं तो भी प्रसाद से कहीं अधिक बड़ा जरूर है। सही मायने में प्रसाद की साहित्यिक कलात्मकता और प्रेमचन्द की सामाजिक संवेदनशीलता, दोनों का साझा प्रवाह है 'उग्र' के संगम पर। उनके मध्य की सबल कड़ी। संक्षेप में उनके कथा-साहित्य का अद्वितीय वैशिष्ट्य है–कलात्मकता के अद्‌भुत प्रयोग के साथ सरल-सीधी बेलाग अभिव्यक्ति। नश्तर-सी दिल तक उतरने वाली स्पष्टोक्ति, उनके स्वभाव और उनके कृतित्व का रूपहला-सुनहरा अलंकरण। उनकी संवेदनाओं के इर्द-गिर्द जो कुछ घटित होता वो उसे बिना लाग-लपेट के परोस देते थे। उनका कहना था–''अगर सत्य को ज्यों का त्यों चित्रित कर देने में कोई कला हो सकती है तो मेरी इन कहानियों में भी कला है और यदि कला हमेशा शुद्ध सत्य ही नहीं हुआ करती तो मेरी धधकती कहानियाँ कला-शून्य हैं। मैं उस कला को लिखना नहीं जानता।''

उनका मत था कि पर्दा डालने से पाप दबता नहीं, बढ़ता है। उनके अतियथार्थवाद में मानव की पूर्ण प्रतिष्ठा और लोकमंगल की कामना कूट-कूट कर भरी है। सन् 1962 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करते हुए स्टाइन बेक ने साहित्य और साहित्यकार के दायित्व को रेखांकित करते हुए कहा था–''वह हमारे दोषों और दुर्बलताओं का पर्दाफाश करे, हमारे काले और खतरनाक सपनों को घसीटकर रोशनी में लाए, ताकि हम सुधर सकें।'' इस दृष्टि से 'उग्र' ने अपने पूरे सर्जन-संसार में इस दायित्व का निर्वाह किया है। 'उग्र' नाम से विख्यात लेखनी के इस सशक्त और श्रेष्ठ कहानीकार, साहित्यकार, नाटककार, कवि-उपन्यासकार तथा अत्यंत ओजस्वी व सफल पत्रकार का मूल नाम पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' था। जैसे 'उग्र' नाम उनके रचनाधर्मी और क्रांतिधर्मी व्यक्तित्व का संक्षेप है, वैसे ही 'बेचन' उनके जीवन का। उनके अधिकतर भाई-बहन बाल्यावस्था में ही चल बसते थे। तत्कालीन मान्यताओं-विश्वासों के अनुरूप लोगों ने उनकी माँ को टोना-टोटका करने की सलाह दी। माँ ने बालक 'उग्र' को झूठ-मूठ के बेचने की लीला रची और उसे बेचकर जो टाका मिला उससे गुड़ खरीदकर खा गई। यह सारा उपक्रम ममत्व और आस्था का था। इसी कारण बाद में उनका नाम ही बेचन रख दिया गया।

'अपनी खबर' में खुद अपनी खबर लेते हुए अपने इस नाम की विचित्रता या महत्ता को रेखांकित किया है–''आज जीवन के 69वें साल में साधिकार कह सकता हूँ कि मुझे ही नहीं, मौत को भी यह नाम नापसंद है। लेकिन अब इस उम्र में तो ऐसा लगता है यह नाम ही नहीं, तिलस्मी गंडा है, जिसके आगे काल

का डंडा भी नहीं चल पा रहा है।'' पौष सुदी 8 संवत 1957(सन् 1900) की रात्रि 8.30 बजे मिर्जापुर जिले के चुनार में जन्मे 'उग्र' अपने निर्धन ब्राह्मण पिता पं. बैद्यनाथ पाण्डेय तथा माता जयकली देवी की संतान थे। निर्धन परिवार में लालन-पालन होने से बाल्यावस्था में ही 'उग्र' का गरीबी की भयावहता से आमना-सामना हुआ। गरीबी का ये हाल कि स्कूल जाने का मौका 14 वर्ष की आयु में जाकर मिला और वह भी केवल पाँच वर्ष के लिए। इस आयु तक उनके ज्ञान-गुरु घर-गलियों-सड़कों के वे कठोर अनुभव थे, जो उन्हें प्रकृत रूप में मिले। अभावों को जीते-जीते जब जीवन के विकराल और त्रासद पहलुओं से दो-चार होने तथा दुनिया की गहराई से खोज-परख करने का वरदान उन्हें ईश्वर ने ही दे डाला था, फिर उनकी लेखनी की धार पैनी कैसे न होती! 'उग्र' के व्यक्तित्व के रचनाशील पहलू बचपन में ही रामलीला में अभिनय करते-करते उजागर होने लगे थे। गरीबी के अनुभव ने उसे पूरी हवा दी। नग्न यथार्थ से परिचय और विपरीत परिस्थितियों के कटु और वितृष्ण अनुभवों से रचनाशीलता के साथ-साथ स्वभाव की उग्रता की लौ भी तेज से तेज होती गई। स्वभाव की यह उग्रता उनके रचनाधर्म में पैनापन बनकर निखरी। अपने 'सरकार तुम्हारी आँखों में' उपन्यास की भूमिका में हिन्दी के नामधारी लेखकों के लिए की गई ''नाई की बाराम में जने-जने ठाकुर'' ''रोज ही सरस्वती के आँगन में मोह-मयी-प्रमाद-मदिरा-से-पागल अनाप-शनाप बकते सुने जाते हैं और सोहं'' जैसी अभिव्यक्तियों में सामाजिक प्रवंचनाओं और मूल्यों की विसंगतियों के प्रति उनके पीड़ाक्रोश के साक्षात् दर्शन होते हैं। पर सदैव 'चलो अकेले! चलो अकेले! चलो अकेले रे!' की धुन पर अस्मिता-उर-द्वीप में दीप जलाए गतिमान रहने का अपना जीवन-संघर्ष-संकल्प और संस्कृति-गौरव-स्वाभिमान खुद उन्हीं के शब्दों में–''आज यह अंधकार मुझे निहायत आशा-मय मालूम पड़ता है, इसलिए कि अपना दीपक मन्द गुण क्षुद्र और स्नेह स्वल्प है, मगर है अपना दीपक !''

वे अत्यधिक मुंहफट थे। व्यावहारिकता के पैंतरों से वे पूरी तरह ही नावाकिफ थे। पर हृदय से अपनी आग की तरह ही निष्कपट निर्मल और सच्चे। स्वाभिमान तो रक्त के कण-कण में बसा था। स्वार्थ से सर्वथा अंजान और ईमानदार ऐसे कि बस पूछो नहीं। उन्होंने जीवन में न कभी दूसरों से बेईमानी की, न कभी अपने-आप से। अंदर-बाहर सब तरह से पारदर्शी। प्रतिभाशाली तो वे जन्मजात थे। और इन सबसे बढ़कर वे एक सच्चे देशभक्त और विचारों से क्रांतिकारी थे। 'उग्र' का कैशोर्य-काल वह काल था, जब देश की स्वाधीनता की चाह ने जन-जन के मन में आग के दावानल भड़का दिए थे। जन-सामान्य के अंदर धधकती आक्रोश की चिनगारियाँ उस समय तक ज्वालाओं का रूप धारण कर सूखी फूस में लगी आग की भाँति पल-पल चारों ओर बढ़ने लगी थीं। एक ओर अहिंसक आन्दोलन की बागडोर पूरी तरह गाँधीजी के हाथों में पहुँच असहयोग आन्दोलन का रूप धारण कर चुकी थी तो दूसरी ओर भगत सिंह सरीखे क्रांतिकारियों की उग्रतर गतिविधियों और शहादतों ने माहौल में देशप्रेम और देशभक्ति का जज्बा इतना घनीभूत कर दिया था कि हर पल उसके विस्फोट का भय अंग्रेजी सत्ता को चैन से बैठने नहीं देता था। उसकी रातों की नींद उड़ चुकी थी। फिर भला 'उग्र' का किशोर मन इससे अछूता कैसे रह सकता था, जिसमें पहले से ही हजार-हजार ज्वालामुखी हिलोरें मार रहे थे।

1915 में 14 वर्ष की आयु में पढ़ाई की शुरुआत करने के बावजूद उसे छोड़ दिल में आजादी की आग लिए 1920 में उन्होंने जेलयात्रा की। इस तरह सामाजिक विषमताओं और विद्रूपताओं के प्रतिक्रियास्वरूप उपजे आक्रोश से निर्मित उनके उग्र रचनाशील व्यक्तित्व को अपने प्रस्फुटन के लिए देशप्रेम और आजादी की क्रांति का एक उपयुक्त और अनुकूल मार्ग मिला।

मुक्त और आदर्श समाज का स्वप्न मन-मस्तिष्क में सँजोए उनकी लेखनी जहां एक ओर पंडितों-पुरोहितों, कठमुल्लाओं किस्म-किस्म के छद्मरूपधारियों यौन-शोषकों दलित-शोषकों, सम्प्रदायवाद, वर्ण-व्यवस्था, जातिवाद आदि से आजीवन जूझती रही वहीं दूसरी ओर उसने आजादी मिलने तक निरन्तर स्वराज का अर्जुन-लक्ष्य साधे अंग्रेजी शासन की तोप-बंदूकों के विरुद्ध प्रचंड सिंहनाद किया। राष्ट्र-स्वातंत्र्य के मार्ग में अवरोध-स्वरूप जो भी आया, चाहे सामन्त हों, राजे-रजवाड़े हों, उनके सेवक-भक्त, पंडे-पंडारू हों, अंग्रेजी पुरस्कार के लोभी हों या सामन्ती इच्छाओं के दास; 'उग्र' ने हरेक से मोर्चा लिया और एक साथ लिया। व्यंग्य की कचोटती शैली में उनका प्रहार सब पर एक जैसा है, फिर चाहे वह समाजवादी हो, पूँजीवादी, साम्यवादी या परम्पराओं में रची-गढ़ी सुविधाजनक व्यवस्था का कोई लम्बरदार। किसी वाद-व्यक्ति से पूर्णतया निस्पृह और अस्पृश्य प्राकृत नदी की भाँति अपना मार्ग उन्होंने स्वयं बनाया। इसका एकमात्र अपवाद यदि कोई थे तो वे थे महात्मा गाँधी, जिनके प्रति वे विनम्र, श्रद्धावनत एवं आस्थावान बने रहे। स्वराज्य और स्वाधीनता के पावन राष्ट्रीय कार्य में रत तद्युगीन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति भी उनकी आस्था किसी राष्ट्रभक्त या देशप्रेमी से कम न थी, किन्तु राजनैतिक मंचों के मायाजाल में फँसकर लेखकीय आस्थाओं-मूल्यों से परमुखापेक्षी हो जाना उन्हें स्वीकार न था। इसलिए वे कांग्रेस में लेखकों के पदग्रहण को रचनाधर्मिता की फिसलन और पतन मानते हुए ऐसी परम्परा व प्रवृत्ति के पूर्णतया विरोधी थे।

अपने रचनात्मक जीवन का प्रारंभ महारूद्र की पवित्र नगरी काशी से करने वाले 'उग्र' कभी एक स्थान पर ठहरकर नहीं रह सके। उन्मुक्त नैसर्गिक मंदाकिनी जलधारा में ठहराव कहां ? मैली तहमद तथा ढीला-ढाला

कुरता पहने बनारस का यह अक्खड़ मस्तमौला पैरों में शनीचर और हाथों में अभिन्न मिर्जापुरी सोटा लिए सर्वत्र अपनी हाजिरजवाबी से लोगों को लाजवाब करता, हमेशा भटकता ही रहा। काशी, कलकत्ता, बम्बई, इन्दौर, उज्जैन, जयपुर दिल्ली, मालवा और न जाने कब कहाँ। जहाँ भी रहे, सभी उनके क्रोध और मिर्जापुरी सोटे से काँपते थे। विशेष रूप से भद्रजनों और अभिजातों की तो हालत पतली हो जाती थी। उन्हें अपने युग का सबसे चर्चित व्यक्ति माना जाता था और तथाकथित सद्जन और सौम्य व्यक्तियों-रचनाकारों की परिभाषा में सर्वाधिक टेढ़ा।

उन्नत ललाट लम्बे कान और मस्तक पर तिलक बनाती दो सीधी रेखाओं वाले 'उग्र' आजीवन अविवाहित रहे। मित्रता भी इक्का-दुक्का लोगों से निभी। पशुओं से लगाव था, शायद उनसे बेहतर हमदर्द दुनिया में कोई और न लगा हो। किन्तु 'उग्र' की उग्रता का कोपभाजन उन्हें भी बनना पड़ता था। उज्जैन प्रवास के दौरान एक कुत्ता पाला। नाम–चिड़–कियांग। खूब सेवा-सुश्रुषा करते, रबड़ी-जिलेबी खिलाते-लगभग रोज, लेकिन मन-मुआफिक न होने पर खूब पीटते भी। यह प्रसंग अपनी आस्थाओं-मूल्यों के प्रति उनकी अत्यधिक सजगता और समर्पण का संकेत है। शायद इसी से वे समाजवादी, साम्यवादी, पूँजीवादी–सभी के प्रति पर्याप्त उग्र थे।

उनको विजया(भंग) और मद्य अत्यंत प्रिय थे। पीते और मस्त रहते। पैसा खूब कमाया, किन्तु उड़ाया उससे भी अधिक। पं. सूर्यनारायण व्यास ने 'उग्र' के चरित्र के इन पहलुओं का अपने संस्मरणों में अनेक स्थानों पर वर्णन किया है। एक घटना-चित्रण देखिए– 'वे ठर्रा पान के बाद बाँस से बंधी बंदरिया नचाते, एक होटल में उनके एक मित्र के साथ जलपान को पहुँचे। होटल में जलपान के बाद उग्र ने करीब बासठ रुपये टिप में दे डाले।'

1930 में मुंबई गए तो फिल्मी दुनिया में प्रवेश किया। फिल्म-लेखन में लग गए। अच्छी आमदनी भी हुई पर रेस-जुए की लत ने कुछ भी संग्रहीत न करने दिया। काशी में घटी एक आश्चर्यचकित करने वाली घटना से उनकी रेस-जुए की लत और चरित्र के कई अनोखे पहलू उजागर होते हैं।

'हुआ यों कि अपनी आदत के मुताबिक 'उग्र' जुए में सारे पैसे हार गए। पर मन अभी भरा न था। सो पहुंच गए सीधे आचार्य शिवपूजन सहाय के घर। आचार्यजी उन दिनों पुस्तक प्रकाशन के सिलसिले में काशी में ही रह रहे थे। कई दिनों से 'उग्र' की उनसे भेंट नहीं हुई थी। तो क्या हुआ मित्र आखिर मित्र है, संकोच कैसा। दूसरी मंजिल पर स्थित उनके घर में घुसे तो देखा आचार्य शिवपूजन सहाय अकेले घर में बैठे हैं, उनकी दूसरी पत्नी का देहान्त हो गया था। शव पड़ा था। स्तब्ध रह गए पर.....ससंकोच' शिवपूजन जी को स्थिति बताई। उनके पास मात्र पचास रुपये थे, सो उन्होंने 'उग्र' को दे दिए। और 'उग्र' रुपये लेकर चल दिए।

सुबह शवयात्रा की सारी व्यवस्थाएँ तो किसी तरह हो गईं, किन्तु यह क्या कम आश्चर्य की बात है कि उस परिस्थिति में भी शिवपूजन जी ने अपने पास के सारे रुपये दे दिए और 'उग्र' ने वे ले भी लिए।'

भले 'उग्र' स्वभाव में उग्र और दबंग बने रहे हों, शिष्टता की कथित परिभाषा में अशालीन हों, किन्तु कृतित्व में वे अत्यंत सहृदय मार्मिक और संवेदनशील थे। कला-शिल्पकार की संवेदनशील और सौन्दर्यशील अभिव्यक्ति बस देखते ही बनती है–

'मेरी एक बीवी थी। गुलाब की तरह खूबसूरत, मोती की तरह आबदार, कोहेनूर की तरह बेशकीमती, नेकी की तरह नेक, चाँद की तरह सादी, लड़कपन की हँसी की तरह भोली और जान की तरह प्यारी।'

'मेरा एक बच्चा था। चाँदनी-सा गोरा, नए चाँद-सा गोरा, युवती के कपोल-सा कोमल, प्रेम-सा सुन्दर, चुम्बन-सा मधुर, आशा-सा आकर्षक और प्रसन्न हँसी-सा सुखद।

मेरी एक माँ थी। मस्जिद की तरह बूढ़ी, आम की तरह पकी, दया की तरह उदार, दुआ की तरह मददगार, प्रकृति की तरह करुणामयी, खुदा की तरह प्यारी और कुरान पाक की तरह पाक।' (दोजख की आग)

'उग्र' की पहली पुस्तक 'ध्रुवचरित' (खण्डकाव्य) नाम से प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशन में उनके बालसखा पं. कमलापति त्रिपाठी के अग्रज काशीपति की पुत्री श्यामादेवी ने उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई थी। तथापि, 'उग्र' को हिन्दी साहित्य-जगत में प्रतिष्ठा मिली उनके प्रथम नाटक–'महात्मा ईसा' से। इस नाटक की भूमिका लिखी थी काशी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लाला भगवानदीन ने। 'महात्मा ईसा' को हिन्दी के चुनिंदा श्रेष्ठ नाटकों में स्थान प्राप्त है।

'उग्र' ने अनगिन रचनाएँ रचीं। प्रकाशित तो जो हुईं, सो हुईं, पर बहुतेरी अप्रकाशित रचनाएँ 'आज' 'मतवाला' जैसे पत्रों में अब भी बिखरी पड़ी हैं। उन्हें संकलित और प्रकाशित कर सामने लाना शेष है। काव्य-रचना से साहित्यिक यात्रा शुरू कर उन्होंने एकांकी-नाटक-उपन्यास-आत्मकथा-संस्मरण-निबंध-आलोचना-व्यंग्य–कहानी-लेख और पत्रकारिता के बहुआयामी क्षितिज को अपनी प्रतिभा से चतुर्दिक आलोकित किया। उन्होंने गंगा का बेटा, आवारा, महात्मा ईसा, अन्नदाता माधव महाराज, चुम्बन(सभी नाटक), चार बेचारे, लाल क्रांति के पंजे(एकांकी), ध्रुवचरित, पारिजातों का बलिदान(काव्य) घंटा, जी जी जी, चंद हसीनों के खुतूत, दिल्ली का दलाल, शराबी, कढ़ी में कोयला, फागुन के दिन चार, जुहू, बुधवा की बेटी, सरकार तुम्हारी आँखों में, (सभी उपन्यास), चाकलेट(व्यंग्य) खुदाराम, चिनगारियाँ (जब्त), पंजाब की महारानी (जब्त), गालिब-उग्र (टीका) अपनी खबर(आत्मकथा) जैसी अनेक प्रख्यात रचनाएँ दी हैं हिन्दी साहित्य को। 'उग्र' के रचना-संसार का ताना-बाना ग्राम्य-शोषण, सामाजिक कुरीतियों-विरोधाभासों व यथार्थ की कटु और नग्न सच्चाइयों के

सामाजिक सरोकार की धरती से लेकर सात्विक भारतीय संस्कृति, मूल्यों व परम्पराओं, राष्ट्रीयता व उत्कट देशप्रेम की गहन भावनाओं के आदर्श आकाश तक फैला हुआ है। उसमें निरपेक्ष और वस्तुनिष्ठ शाश्वत मूल्यों तथा स्वस्थ परम्पराओं का परचम पूरी भाव-प्रवणता से फहराता है। हिन्दू-मुसलिम भेद-भाव मिटाने का प्रयास अगर 'चन्द हसीनों के खुतूत' है, तो साम्प्रदायिकता के जूनून और उसके भयावह परिणामों के साथ-साथ सामाजिक संबंधों की नग्न वास्तविकता का उद्घाटन हैं 'मलंग' और 'दोजख की आग'। 'अभागा किसान' में ग्रामीण-शोषण का करुण साकार दर्शन है, तो 'सरकार तुम्हारी आँखों में' राजे-रजवाड़ों की छद्म-सौन्दर्यप्रियता व भोग-विलास का सार्वजनीकरण।

1921 में जेल से छूटने के बाद, बनारस से उन्होंने अपनी साहित्य-साधना आरंभ की। शुरुआती लेखन के दौरान, लगभग तीन वर्ष तक उनकी कहानियाँ, कविताएँ, व्यंग्य और अनेक लेख वहां के दैनिक अखबार 'आज' में छपते रहे। 'आज' के संपादक पराड़कर जी उन आरम्भिक रचनाओं की वर्तनी और भाषा सम्बन्धी त्रुटियों को सुधारने के साथ ही, उनकी घोर राजविरोधी भाषा-शैली में ऐसा सुधार करते कि रचना की मारक-शक्ति तो अवश्य वैसी की वैसी रहे, किन्तु स्वरूप जरूर बदल जाए। उनकी इस सहृदयता के लिए 'उग्र' जी उन्हें अंत तक याद करते थे। पालीवालजी से भी 'उग्र' को सदैव प्रोत्साहन मिलता रहा। पर पैरों में तो शनीचर था। मन ऊबा, तो कलकत्ता प्रस्थान कर गए। वहां महाप्राण निराला और आचार्य शिवपूजन सहाय की मित्रता प्राप्त हुई। उनके साथ 'मतवाला' के संपादकीय से जुड़े रहे। काफी बाद में, कलकत्ता से 'मतवाला' का प्रकाशन बन्द होने पर, 'उग्र'जी ने 1947 में पुनः उसका प्रकाशन मिर्जापुर से शुरू किया था। जीवन के उत्तरार्द्ध में एक बार फिर कोलकाता जाकर (1950-52) जीवन-यापन का प्रयास किया था, परंतु अंततः दिल्ली ही उनके दिल के नजदीक लगी।

कला यदि युग की अन्तर्निहित संभावनाओं का उद्घाटन करती है, तो पत्रकारिता समसामयिक संस्कृति-सभ्यता का इतिहास लिखती है। सूचना प्रदान करने के साथ, समसामयिक समस्याओं के स्वस्थ व सार्थक निदान के प्रति नए और विकासमान दृष्टिकोण का प्रतिपादन, प्रगतिशील प्रतिस्पर्धा-जागरण के लिए नूतन विचार व प्रेरणा, समाज का ज्ञानवर्द्धन और मार्गदर्शन पत्रकारिता का महत् उद्देश्य होता है। इस मायने में, युग व समाज की दशा और दिशा के निर्धारण में पत्रकारिता की भूमिका महाभारत में कृष्ण-सी अहम और अपरिहार्य है। 'उग्र' इस निकष पर खरे उतरते हैं। पत्रकार-संपादक के रूप में वे वर्तमान के सत्यनिष्ठ सजग सिपाही और समाज के सच्चे साथी हैं, तो भविष्य के लिए भविष्यद्रष्टा पथ-प्रदर्शक। सत्याश्रित स्वतन्त्र विचारों के मध्यम से ज्ञान-स्वातन्त्र्य की राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवतावादी चेतना जागृत करने और तत्संबंधी समस्याओं को सुलझाने में उनसे सतर्क नैतिक पत्रकार दिखाई नहीं देता। यद्यपि प्रारंभिक अवधि में 'आज' और तत्पश्चात् 'मतवाला' को छोड़कर, 'उग्र' किसी पत्र से लम्बे समय तक जुड़े न रह सके, पर जन-हृदय पर दीर्घकालिक प्रभाव डालने वाले उनके सामयिक और शाश्वत सामूहिक विचार अपने उद्देश्य में सर्वांगीण सफल रहे। चाहे वह 'मतवाला' की सामाजिक-राजनैतिक-राष्ट्रीय चेतना से लबालब व्यंग्य-प्रधान शृंखला हो या 'स्वदेश' की क्रांति-चेतना पूर्ण एक अंक, या 'विक्रम' के पाँच साहित्यिक अंक, या 'हिन्दी पंच' के सत्य-संस्कृति रक्षक चार अंक। दैनिक 'आज' ने 'हिन्दी पंच' की समीक्षा करते हुए लिखा था–'जो लोग कहते हैं कि हिन्दी में अंग्रेजी पत्र के टक्कर का कोई पत्र नहीं है, उनको अब हिन्दी पंच के टक्कर का पत्र खोजने के लिए सोचना पड़ेगा।

'उग्र' ने 'संग्राम', 'हिन्दी पंच', 'उग्र', 'भूत', 'मतवाला', 'विक्रम', 'वीणा', 'स्वदेश', 'स्वराज' आदि कई पत्रों में लेखन-सम्पादन किया। गोरखपुर के साप्ताहिक 'स्वदेश' में 'उग्र' जी ने उग्र तेवर के ऐसे-ऐसे लेख लिखे और पत्र का ऐसा संपादन किया कि अंग्रेजी हुकूमत की दुनिया में तूफान मच गया। राष्ट्रीय चेतना के लावे से लबालब उग्र-अभिव्यक्ति के ज्वालामुखियों ने दूर-दूर तक चिनगारियाँ बिखेर दीं, जिसकी तपिश में स्वतंत्रता आन्दोलन मशाल की ज्वाला से दावानल की आग बन गया। 'स्वदेश' अंग्रेजी सत्ता की टेढ़ी नजर में चढ़ गया। पर चरम तो अभी शेष था। 'उग्र' संपादित 'स्वदेश' का दशहरा अंक (8 अक्तूबर, 1924) निकला। बारूद-सा धधकता संपादकीय और 'उग्र' का एकांकी 'लाल क्रांति के पंजे' दोनों ही महाकाल की लेखनी के प्रलय-तांडव के प्रतिरूप। जले-भुने अंग्रेजी शासन की भृकुटियाँ तन गई। अंक जब्त करने के साथ ही, 'स्वदेश' के संचालक-संपादक दशरथ प्रसाद द्विवेदी को जेल भेज दिया गया। पत्र छपा था प्रेमचन्द के सरस्वती प्रेस में, सो उसके मुद्रक और प्रेमचन्द के भाई महताब राय भी पकड़े गए। मुकदमा चला। 'स्वदेश' तहस-नहस हो गया। खुद 'उग्र' को नौ महीने की सजा हुई। अपनी गिरफ्तारी के संबंध में 'अपनी खबर' में 'उग्र' ने लिखा है ''पाँचवें महीने पुलिस सी. आई.डी. ने मालाबार हिल पर मुझे गिरफ्तार किया गया। पाँव में बेड़ी, हाथ में हथकड़ी, भुजा पर सूती रस्सा बँधवाए, तीन-तीन सशस्त्र पुलिस वालों के साथ मैं बम्बई से गोरखपुर भेजा गया।'' यद्यपि पत्र के सम्पादक द्विवेदी जी थे, किन्तु वस्तुतः पत्र का संपादन 'उग्र' ही करते थे। उनकी रचनाओं का ही परिणाम था कि उनके कहानी-संग्रहों–'चिनगारियाँ' और 'पंजाब की महारानी' को अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया।''

❑❑❑

स्वर्ग का मार्ग

● संजय माहेश्वरी
सिटी, भुवनेश्वर

महात्मा बुद्ध के समय की बात है। उन दिनों मृत्यु के पश्चात् आत्मा को स्वर्ग में प्रवेश कराने के लिए कुछ विशेष कर्मकांड कराये जाते थे। होता ये था कि एक घड़े में कुछ छोटे-छोटे पत्थर डाल दिए जाते और पूजा-हवन इत्यादि करने के बाद उस पर किसी धातु से चोट की जाती, अगर घड़ा फूट जाता और पत्थर बाहर निकल जाते तो उसे इस बात का संकेत समझा जाता कि आत्मा अपने पाप से मुक्त हो गयी है और उसे स्वर्ग में स्थान मिल गया है। चूँकि घड़ा मिट्टी का होता था, इसलिए इस प्रक्रिया में वह हमेशा ही फूट जाता और आत्मा स्वर्ग को प्राप्त हो जाती और ऐसा कराने के बदले में पंडित खूब दान-दक्षिणा लेते।

अपने पिता की मृत्यु के बाद एक युवक ने सोचा कि क्यों न आत्मा-शुद्धि के लिए महात्मा बुद्ध की मदद ली जाए, वे अवश्य ही आत्मा को स्वर्ग दिलाने का कोई और बेहतर और निश्चित मार्ग जानते होंगे। इसी सोच के साथ वह महात्मा बुद्ध के समक्ष पहुंचा।

"हे महात्मन्! मेरे पिताजी नहीं रहे। कृपया आप कोई ऐसा उपाय बताएं कि उनकी आत्मा को स्वर्ग में ही स्थान मिलना सुनिश्चित हो सके।" युवक विनयपूर्वक बोला।

बुद्ध बोले, "ठीक है। जैसा मैं कहता हूँ वैसा करना- तुम उन पंडितों से दो घड़े लेकर आना। एक में पत्थर और दूसरे में घी भर देना। दोनों घड़ों को नदी पर लेकर जाना और उन्हें इतना डुबोना कि बस उनका ऊपरी भाग ही दिखे। उसके बाद पंडितों ने जो मन्त्र तुम्हें सिखाये हैं उन्हें जोर-जोर से बोलना और अंत में धातु से बनी हथौड़ी से उनपर नीचे से चोट करना। और ये सब करने के बाद मुझे बताना कि क्या देखा।"

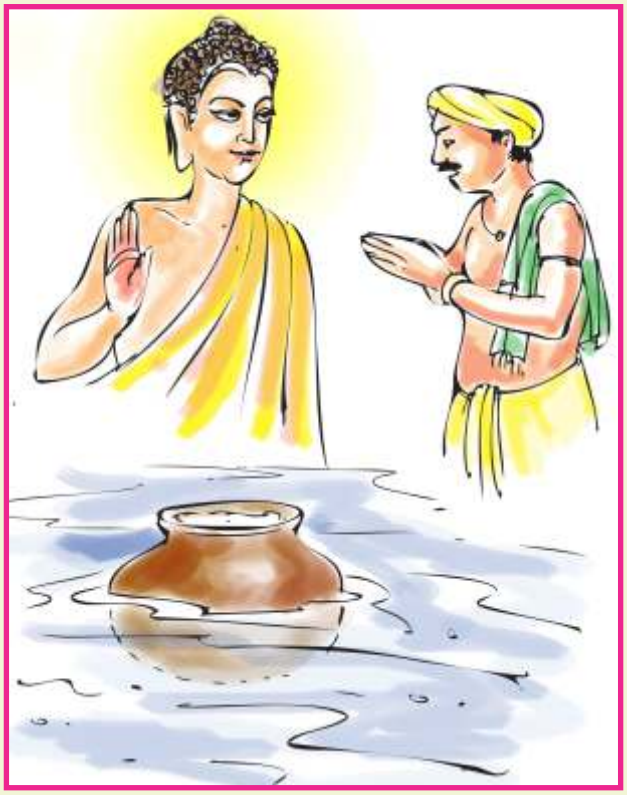

युवक बहुत खुश था। उसे लगा कि बुद्ध द्वारा बताई गयी इस प्रक्रिया से निश्चय ही उसके पिता के सब पाप कट जायेंगे और उनकी आत्मा को स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

अगले दिन युवक ने ठीक वैसा ही किया और सब करने के बाद वह बुद्ध के समक्ष उपस्थित हुआ।

"आओ पुत्र, बताओ तुमने क्या देखा", बुद्ध ने स्नेहपूर्वक पूछा।

युवक बोला, "मैंने आपके कहे अनुसार पत्थर और घी से भरे घड़ों को पानी में डाल कर चोट की। जैसे ही मैंने पत्थर वाले घड़े पर प्रहार किया, घड़ा फूट गया और पत्थर पानी में डूब गए। उसके बाद मैंने घी वाले घड़े पर वार किया, वह घड़ा भी तत्काल फूट गया और घी नदी के बहाव की दिशा में बहने लगा।"

बुद्ध बोले, "ठीक है ! अब जाओ और उन पंडितों से कहो कि कोई ऐसी पूजा, यज्ञ, इत्यादि करें कि वे पत्थर पानी के ऊपर तैरने लगें और घी नदी की तलहटी पर जाकर बैठ जाए।"

युवक हैरान होते हुए बोला, "आप कैसी बात करते हैं? पंडित चाहे कितनी भी पूजा कर लें, पत्थर कभी पानी पर नहीं तैर सकता और घी कभी नदी की सतह पर जाकर नहीं बैठ सकता!"

बुद्ध बोले "बिल्कुल सही, और ठीक ऐसा ही तुम्हारे पिताजी के साथ है। उन्होंने अपने जीवन में जो भी अच्छे कर्म किये हैं, वे उन्हें स्वर्ग की तरफ उठाएंगे और जो भी बुरे कर्म किये हैं वे उन्हें नरक की ओर खीचेंगे। और तुम चाहे जितनी भी पूजा करा लो, कर्मकाण्ड करा लो तुम उनके कर्म-फल को रत्ती भर भी नहीं बदल सकते।"

युवक बुद्ध की बात समझ चुका था कि मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग जाने का सिर्फ एक ही मार्ग है, और वह है जीवित रहते हुए अच्छे कर्म करना।

❑❑❑

राजभाषा कार्यान्वयन : उपलब्धियाँ एवं समाचार

संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उप समिति द्वारा नराकास कोलकाता का राजभाषा कार्यान्वयन निरीक्षण

सिडबी को सतर्कता उत्कृष्टता का प्रथम पुरस्कार 2015–16 प्राप्त

नई दिल्ली में राज्य स्तरीय बैंकर समिति के वित्तीय साक्षरता शिविर में शहरी विकास मंत्री श्री वेंकैया नायडू का स्वागत

नई दिल्ली में राज्य स्तरीय बैंकर समिति के वित्तीय साक्षरता शिविर में सिडबी के स्टॉल पर श्री जयंत सिन्हा, तत्कालीन वित्त राज्य मंत्री का आगमन

चंडीगढ़ में अंतर बैंक आशुभाषण प्रतियोगिता

नई दिल्ली में योग दिवस का आयोजन

राजभाषा कार्यान्वयन : उपलब्धियाँ एवं समाचार

लखनऊ कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

मुंबई कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

नई दिल्ली कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

अहमदाबाद कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

गुड़गांव कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

हुबली कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

राजभाषा कार्यान्वयन : उपलब्धियाँ एवं समाचार

लखनऊ क्षेत्रीय कार्यालय में राजभाषा समीक्षा बैठक

जयपुर कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

गाँधीधाम कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

कोयम्बतूर कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

मुंबई कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

जयपुर कार्यालय में हिंदी कार्यशाला

तकषी शिवशंकर पिल्लै

● आलोक कुमार चतुर्वेदी
मुम्बई कार्यालय

जीवन का सार या गंतव्य मनुष्य है और मानव-जीवन के तिरस्कृत, वंचित और दलित तबकों से गहरा सरोकार रखने वाला दृष्टिकोण ही मानवतावादी दृष्टिकोण है। यह तकषी शिवशंकर पिल्लै का रचनात्मक पाथेय है। उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, नाटक आदि विभिन्न विधाओं को समृद्ध करने वाले तकषी का दैहिक अवसान, प्रकारांतर से, ऐतिहासिक दृष्टि सम्पन्नता के साथ रचनात्मकता में प्रवृत्त होने का भी अवसान है।

केरल स्थित धान्यागार के कुट्टनाड के तकषी नामक गाँव में 1912 ई. में जन्मे तकषी शिवशंकर पिल्लै का सम्पूर्ण साहित्य अपनी मिट्टी से गहरे जुड़ाव का असंदिग्ध साक्ष्य प्रस्तुत करता है। विलक्षण रचनात्मक मेधा से सम्पन्न तकषी ने मात्र 17 वर्ष की आयु में "आधूकल" नामक कहानी और 22 वर्ष की उम्र में "प्रतिफलम्" नामक उपन्यास की रचना की। स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "कृषि के क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत प्रतिपादित करने वाला मैं पहला लेखक हूँ।" प्रेमचन्द के समानान्तर ही, तकषी-साहित्य में भारतीय जनजीवन की आशाओं, असफलताओं, उपलब्धियों, जिजीविषाओं, संघर्षों और स्वप्नों की विभिन्न मर्मस्पर्शी संवेदनाएँ विद्यमान हैं। तकषी की साहित्यिक जययात्रा निरन्तर विकसनशीलता की उर्वर और दृढ़ जमीन पर प्रतिष्ठित है। इनकी साहित्यिक साधना का उत्तरार्द्ध सामाजिक न्याय के अन्वेषण में अग्रसर दिखाई देता है।

तिरुअनंतपुरम में विधि के अध्ययन के समय, तत्कालीन बुद्धिजीवी बालकृष्ण पिल्लै के सान्निध्य में तकषी का साहचर्य गुस्ताव

क्लाबेयर, मोपासाँ, मैक्सिम गोर्की जैसे ख्यातिलब्ध विदेशी साहित्यकारों से हुआ। तकषी साहित्य की विपुलता में 32 उपन्यास, लगभग 20 कहानी संग्रह, 800 से अधिक कहानियाँ, आत्मकथा के तीन खण्ड और यात्रावृत्त तथा नाटक समाए हुए हैं।

साहित्यिक संघटन का निकष अन्तर्निहित कथ्य में ही नहीं, बल्कि उसके शैल्पिक ढाँचे तक में संचरित रहता है। जहाँ समूचा आधुनिक साहित्य कथ्य और शिल्प के दोहरे मानदण्डों के अतिवादों से घिरा था, वहीं तकषी ने "मैं कभी शैली के झंझट में नहीं पड़ा, मैं कथ्य को सुन्दर ढंग से व्यक्त करने वाला शिल्प चाहता हूँ" जैसी परिकल्पना प्रतिपादित की।

1955 में इनका प्रख्यात उपन्यास "चेम्मीन" (मछुआरे) प्रकाशित हुआ। अंबलश्रुषा के तट पर बसने वाले मछुआरों के जीवन से जुड़े यथार्थ के चरम को उद्घाटित करने वाला यह उपन्यास समुद्र की लहरों के साथ प्रेम के ज्वार से जूझते मछुआरों के जीवन का अभूतपूर्व मार्मिक आख्यान है। जिस प्रकार प्रेमचन्द का यथार्थवादी और महाकाव्यात्मक आख्यान 'गोदान' उनके रचनात्मक उत्कर्ष का प्रमाण है, उसी प्रकार तकषी का महाकाव्यात्मक 'चेम्मीन' समूचे भारतीय साहित्य की अविस्मरणीय उपलब्धि है। यह आकारण नहीं कि आर.ई. अशेर ने 'चेम्मीन' को भारत से बाहर मलयालम भाषा की पहचान का पर्याय माना है। उनका मत है कि "यदि भारत से बाहर मलयालम भाषा की कोई पहचान है, तो सिर्फ इस रूप में कि इसी भाषा में तकषी ने चेम्मीन का सृजन किया।" इस कालजयी कृति के माध्यम से तकषी ने मछुआरों के जीवन के तमाम यथार्थ को अमर कर दिया है।

तकषी के "तोट्टियुते मकन" (भंगी का बेटा) और 'तोण्डिवर्गम्' (भिखारी समाज) जहाँ समाज के अत्यन्त ही दलित-दमित वर्ग का हृदय-विदारक चित्र प्रस्तुत करते हैं, वहीं "रंटि टडंषि" (दो सेर चावल) पुलय समाज के खेतिहर मजदूरों की जीवनगत जटिलताओं का दोटूक और बेबाक उद्घाटन है। 1940 से पूर्व की इनकी रचनाओं में मोपासाँ और एमिल जोला के माध्यम से सम्पन्न प्रभाव-ग्रहण भी है और स्व के तलाश की चेष्टा भी। "प्रतिफलम्" और "पतितपंकजम्" ऐसी ही औपन्यासिक रचनाएँ हैं। इसके अनंतर, इनके उपन्यासों में राजनैतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तत्वों की सघनता स्पष्ट परिलक्षित होती है। "तोट्टियुते मकन" और "तोण्डिवर्गम्" इनके इसी श्रेणी के उपन्यास हैं। इन कृतियों में, तकषी की मनीषा मार्क्सवादी उन्मुखता से अपनी खुराक जुटाती दिखाई देती है। तकषी की साधना का चरमोत्कर्ष "चेम्मीन", "इड़प्पदिकल" और "कयर" जैसे अद्वितीय उपन्यासों में फलीभूत

होता है। पाठक के स्मृतिग्रन्थ में "चेम्मीन" उपन्यास का उत्तरार्द्ध, अर्नेस्ट हेमिंग्वे के "ओल्डमैन एंड द सी" की याद दिलाता है। "कयर" उनकी औपन्यासिक सम्पूर्णता के अद्‌भुत साक्ष्य की भाँति सम्मुख आता है। इसमें कतिपय पीढ़ियों के बीच चल रहे जीवन-चक्र को मूर्तिमान करने की सामर्थ्य विद्यमान है। यही कारण है कि समालोचक इसकी महाकाव्यात्मक महिमा को टालस्टाय के "वार एंड पीस" के समानांतर रखते हैं। यही औपन्यासिक सम्पूर्णता तकषी को भारत के प्रतिनिधि उपन्यासकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करती है। इनके "रंटि टडंषि" और 'चेम्मीन' जैसे उपन्यासों ने फिल्मों को भी प्रेरणा प्रदान की है।

तकषी की सृजनात्मकता उपन्यासों तक ही सीमित नहीं है। वे उच्च कोटि के कहानीकार भी हैं। तकषी का पहला कहानी संग्रह 'वेल्लापोक्कथिल' 1934 में प्रकाशित हुआ। इसे मलयालम कहानी साहित्य में क्लासिक और नई धारा का प्रवर्तक माना जाता है। तकषी ने 'इन्कलाब', 'मकलुटे मकल', 'प्रतीक्षकल' व 'प्रतिज्ञा' जैसा अविस्मरणीय कहानियाँ लिखी हैं। पर यह कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं कि छह दशकों से अधिक समय तक साहित्य-सृजन में रत इस कालजयी कथाकार-उपन्यासकार को हम मात्र 'चेम्मीन' के माध्यम से ही जानते हैं। और इससे भी बड़ी विडम्बना यह है कि दुनिया की 19 भाषाओं में अनूदित होने के पश्चात् भी, 'चेम्मीन' अपने ही देश के विशाल पाठक-वर्ग के लिए अभी तक अपरिचित है।

स्वाध्याय करते हुए, तकषी ने अनुवाद के माध्यम से फ्रेंच और रूसी साहित्य का गहन अध्ययन किया। इन्होंने कृषि के क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त ही नहीं प्रतिपादित किया, बल्कि अपने चिन्तन में वे फ्रॉयड की विचारधारा से भी एक सीमा तक प्रभावित थे। उनकी आरम्भिक रचनाओं पर बाँग्ला साहित्य का भी असर था। स्वयं को सदैव एक ग्रामीण के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले तकषी के लम्बे और रचनात्मक जीवन में लेखन, वकालत और खेती, ये तीन प्रधान अवलम्ब रहे। ऐसे महान उपन्यासकार की विनम्रता 1984 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करते समय दिए गए उनके भाषण में देखी जा सकती है, 'मैं किसी भाषा का विद्वान नहीं हूँ, न ही किसी विषय-विशेष का ज्ञाता हूँ, मैं एक ग्रामीण हूँ, जिसका पालन-पोषण कुट्टनाड क्षेत्र के एक दूरस्थ ग्राम में हुआ।' उनके निधन पर 'जनसत्ता' ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में ठीक ही कहा है कि ताराशंकर बंदोपाध्याय के 'गणदेवता' या प्रेमचन्द के 'गोदान' की तुलना में कहीं ज्यादा सघनता और विस्तार से 'कयर' नामक उपन्यास भारतीय जन-जीवन के यथार्थ से हमारा परिचय कराने में सक्षम है। तकषी शिवशंकर पिल्लै को ख्याति इसलिए नहीं मिली कि उनकी कुछ रचनाओं पर फिल्में बनीं या उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला, बल्कि इसलिए कि वे कालजयी रचनाकार थे, जिन्होंने 'चेम्मीन' और 'कयर' जैसे महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखे।

कथाशिल्पी तकषी शिवशंकर पिल्लै अब हमारे बीच नहीं रहे, लेकिन हमारे समाज की दिनोंदिन और जटिल होती समस्याओं से लड़ने में उनके विपुल साहित्य की महत्ता अत्यधिक बढ़ जाती है।

❑❑❑

कविता

स्वच्छता

● अनिल कुमार शर्मा
मुम्बई कार्यालय

राष्ट्र का एक मुद्दा यहाँ आम होना चाहिए।
स्वच्छता को भारत की पहचान होना चाहिए।।
देर से ही सही, किसी ने तो बीड़ा उठाया स्वच्छता का,
अब तो इसे अमली जामा पहनाया जाना चाहिए।
कागजों में शौचालय बनाने से नहीं होगा भारत का उद्धार,
एक साथ, एक संकल्प से शौचालयों का निर्माण होना चाहिए ।
झाड़ू लेकर फोटो खिंचवाने से, नहीं होगा स्वच्छता मिशन कामयाब,
वास्तविकता में दिल से, झाड़ू को उठाया जाना चाहिए।
जो सफाई-कर्मी हमारा कचरा उठाते हैं, जरा उनकी भी सोचो,
उनका भी तो कुछ हम सब को, ध्यान होना चाहिए।
अब तो बापू, मोदीजी के संकल्प से, हमें मिला है मौका दोस्तो,
स्वच्छता में भारत को अव्वल मुकाम पर, पहुंचाया जाना चाहिए।
स्वच्छता को दिल में बसा लो दोस्तो,
स्वच्छता को गले से लगा लो दोस्तो,
आप स्वच्छ तो मेरा भारत भी स्वच्छ हो जाएगा,
स्वच्छता को कण-कण में रमा लो दोस्तो।

बशीर अहमद 'मयूख'–ज़हर के ख़िलाफ़ एक आवाज़

● शशिधर पुरोहित
प्रधान कार्यालय, लखनऊ

कविता अपने काल का वक्तव्य है। यदि ऐसा नहीं है तो कम से कम वह कविता तो नहीं ही है। ये विचार हैं कविता के बारे में सुलझी सोच रखने वाले बशीर अहमद 'मयूख' के। रणबांकुरों की धरती राजस्थान के कोटा जिले के छोटे से गाँव में जन्मे 'मयूख' कवि हैं, स्वतंत्रता सेनानी हैं, विचारक हैं, लेखक हैं और इन सबसे बढ़ कर सांप्रदायिक सद्भाव व राष्ट्रीय एकता के प्रबल पक्षधर। लेकिन एक साधारण-सी शख्सियत हैं। पेशे से किसान 'मयूख' की मूल चिंतन-दृष्टि आदमी -आदमी में अभेद की है।

कवि 'मयूख' की भारतीय साहित्य को सबसे अहम देन उनका किया अनुवाद कार्य है। यह अनुवाद काव्यानुवाद है और यह काव्यानुवाद धार्मिक ग्रथों को लेकर हुआ है। ऋगवेद की ऋचाएं, जैन आगम सूक्त, वेद, कुरान, गीता, उपनिषद का हिन्दी काव्यानुवाद कर उन्होंने एक असंभव काम को संभव बनाया है।

ऋगवेद की ऋचाओं व मंत्रों का काव्य रूप 'स्वर्ण रेख' के रूप में सामने आया। इसे 1972 में भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली ने प्रकाशित किया और तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने इसका विमोचन किया। उनका अगला प्रयास जैन-आगम सूक्तों का काव्य-रूपांतरण रहा। पाठक के आगे यह प्रयास 'अर्हत' के रूप में आया, जिसे तत्कालीन राष्ट्रपति ने विमोचित किया। मयूख के काव्यानुवाद कार्य में कुछ और किताबें जुड़ीं, सन् 1984 में जब गुरुग्रंथ साहिब, वेद, गीता, कुरान, उपनिषद, जैन-बौद्ध आगम सूक्तों का काव्य-रूपांतरण एक ही किताब के रूप में सामने आया। नाम था 'ज्योति पथ'। दो-तीन वर्षों के बाद ही राजपाल एंड सन्स दिल्ली ने इसका दूसरा संस्करण छापा। नामानुरूप 'अनेकता में एकता' की मिसाल कायम करने वाली यह किताब देश-विदेश में खूब चर्चित रही।

ऐसा भी नहीं है कि 'मयूख' का सरोकार कविता से ही रहा है। सांस्कृतिक चेतना को लेकर उनके निबंधों का संकलन सन् 1985 में 'गुमशुदा की तलाश' के नाम से छपा। शायद सांस्कृतिक मूल्यों को तलाशने, तराशने व संवारने का एक सफल प्रयास 'मयूख' ने इस संग्रह में किया है। इसके बाद 'सूर्य बीज' को लिया जा सकता है जो गीति-कविता संग्रह है। सन् 1991 में छपा यह संग्रह 'मयूख' की विचारधारा को समझने की नई दृष्टि देता है।

ऐसा नहीं है कि 'मयूख' का सृजन सदा से ही उत्कृष्ट रहा है। उन्हीं के शब्दों में 'मैंने भेड़ों के लिए लिखा है और भेड़ चराने वालों के लिए भी। फिलहाल वे उपनिष्दों पर काम कर रहे हैं।

सन् 1978 और 1986 में वे हिन्दी सलाहकार समिति के मानद सदस्य रहे। वे भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय एवं जल संसाधन मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समितियों और राजस्थान की संस्कृत अकादमी व उर्दू अकादमी के भी सदस्य रहे। इस समय वे रेलवे बोर्ड की हिन्दी सलाहकार समिति और जल, भूतल परिवहन मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्य हैं। मयूख को प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन नागपुर ने देश के 13 सम्मानित लेखकों में शामिल किया है। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन मॉरिशस ने विशिष्ट अतिथि की हैसियत से इन्हें बुलाया।

यूं एशियन राइटर्स की 'हू इज हू' में भी 'मयूख' का नामोल्लेख हुआ है। राजस्थान सरकार ने साहित्य की विशिष्ट सेवाओं के लिए पाँच सौ रुपए मासिक आजीवन पेंशन उन्हें प्रदान की है। अगस्त, 1990 में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ने अंतरराष्ट्रीय रामायण कांफ्रेंस में भाग लेने हेतु 'मयूख' को मारीशस भेजा, जहाँ उनके प्रयास सराहे गए।

जहाँ तक सम्मान-समारोहों का प्रश्न है, वे दर्जनों बार सम्मानित हुए हैं। सन 1972 में यदि शुरुआत करें तो नगर निगम, दिल्ली से प्राप्त नागरिक अभिनंदन पहला सम्मान ठहरता है। सन् 1976 में उपराष्ट्रपति बी.डी. जत्ती द्वारा प्रदत्त दशरथमल संधवी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, 1978 में श्री रामेश्वर टांटिया ट्रस्ट कलकत्ता का श्री रामेश्वर टांटिया स्मृति पुरस्कार, अवधी अकादमी उत्तर प्रदेश, कार्यनिष्पादन सम्मान, राष्ट्रभाषा परिषद बिहरा का हिन्दी भाषा लेखक पुरस्कार, राजस्थान दिवस समारोह समिति का 'राजस्थान श्री' का अलंकरण, देश की पच्चीस से अधिक संस्थाओं द्वारा प्रदत्त अभिनंदन पत्र हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश का 21 हजार रुपए का संस्थान पुरस्कार, पं. दीनदयाल उपाध्याय 'साहित्य पुरस्कार, अक्तूबर, 1991 में राष्ट्रीय हिन्दी परिषद का दिया 'साहित्य मनीषी' की सर्वोच्च उपाधि इसी कड़ी में आगे जुड़ते हैं।

1926 की विजयदशमी यानी 16 अक्तूबर को जन्मे मयूख सन् 1942 में स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रियता से भाग लेकर सन् 1972 तक समाजवादी पार्टी में संबंद्ध रहते हैं। सन् 1972 में वे दलगत राजनीति से संन्यास ले साहित्य सृजन में जुटते हैं। यूं कविता-लेखन की उनकी यात्रा सन् 1942 में शुरू होती है। सन् 1950 तक वे देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रकाओं में प्रकाशित होने लगते हैं और आज तक स्वतंत्र लेखन को अपनाए हुए हैं।

सांप्रदायिक सद्भावना को समर्पित उनका लेखन कुरान पर वेदों का प्रभाव देखता है– (कादंबिनी जून, 1992 पृष्ठ 26 'मयूख' बशीर अहमद 'कुरान पर वेदों का प्रभाव') और भारतीय संस्कृति को समर्पित है। यदि उन्हीं के शब्दों में लिखे तो 'हमारे धर्म, वेद व कुरान अलग-अलग हो सकते हैं। हमारे आराधना-स्थान मंदिर-मस्जिद और उपासना पद्धातियां अलग हो सकती हैं पर हमारी संस्कृति, हमारी कौम भारतीय संस्कृति और भारतीय कौम है।

वाकई, जब आज इस घुट्टी में जहर घोलने की खूब कोशिश हो रही है, 'मयूख' व उन जैसे अन्य लोगों का लेखन आज और अधिक सार्थक, सामयिक व ज़रूरत बन गया है।

❑❑❑

पढ़िए और बताइए प्रतियोगिता संख्या 22, अंक 77 अंतिम तारीख - 30 अगस्त 2016 पुरस्कार रु. 200

प्रतियोगिता सं. 22 के प्रश्न -

1. वर्ष 1991 में देश की जीडीपी वृद्धि दर कितने प्रतिशत थी ?
2. प्रख्यात लेखिका शिवानी जी की मृत्यु किस तारीख को हुई ?
3. 'मैं एक ग्रामीण हूँ, जिसका पालन-पोषण कुट्टनाड क्षेत्र के एक दूरस्थ ग्राम में हुआ।' यह किसने कहा था ?
4. किस भारतीय लेखिका की आत्म-कथा 'रसीदी टिकट' शीर्षक से प्रकाशित हुई है ?
5. 'सरकारी सहायता आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, यह तथ्य सर्वथा उपयुक्त नहीं है।' यह किस अर्थशास्त्री का मत है ?

कृपया अपने उत्तर निर्धारित तारीख तक डाक, कुरियर अथवा ई-मेल से rvsingh@sidbi.in, untripathi@sidbi.in या pbharadwaj@sidbi.in, पर भेजें। प्रतियोगिता केवल सिडबी परिवार के लिए।

संकल्प के अक्तूबर-दिसम्बर 2015 अंक में प्रकाशित 'पढ़िए और बताइए' प्रतियोगिता सं. 21 के भाग्यशली विजेता निम्नवत हैं -

सर्वश्री/सुश्री
कीर्ति ठक्कुर पुत्री-प्रकाश कुमार ठक्कुर, लखनऊ
नीरज वर्मा, मुम्बई
श्रीदेवी महेश पत्नी सी.महेश, लखनऊ
छवि राजवंशी, पत्नी-विक्रांत राजवंशी, मुम्बई
सुष्मिता सूर्याजी, मुम्बई

इनके उत्तर भी सही पाए गए- सर्वश्री/सुश्री, अनुजा आनंद खरे, मुम्बई कार्यालय, अमरनाथ चौहान, भोपाल, संजय शुक्ला, रायपुर, मनाली मोघे, मुम्बई, दयाराम न्योपाने पुत्र-चिन्तामणि न्योपाने, लखनऊ, निभारानी भौमिक, लखनऊ, स्वाति आठल्ये, मुम्बई, मंजू जैन, पत्नी - आर.सी जैन, प्रियंका जैन पत्नी-धर्मेन्द्र जैन, अहमदाबाद, अनिल कुमार शर्मा, मुम्बई, तमाल दास गुप्त, लखनऊ, अजय कुमार सिंह, फरीदाबाद क्षेका

संवेदना की शिल्पी–अमृता प्रीतम

● नरेश कुमार सोलंकी
नई दिल्ली क्षेत्रीय कार्यालय

यह जिस्म मरता है, तो सब कुछ मर जाता है, पर स्मृति के धागे कायनाती कणों के होते हैं, मैं उन कणों को चुनूँगी, धागों को बुनूँगी और मैं तुम्हें फिर मिलूँगी।

विभाजन की त्रासदी झेलती महिलाओं के खामोश दर्द को बयां करने वाली मशहूर लेखिका अमृता प्रीतम फिर मिलने का वादा कर इस दुनिया से कूच कर गईं। शब्द और संवेदना को एकाकार करने वाली अमृता 31 अक्तूबर, 2005 को अतीत बन गईं। पंजाबी साहित्य को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंच पर स्थापित करने वाली अमृता पंचातत्वों में विलीन हो गईं और पीछे छोड़ गईं अविस्मरणीय यादें। साहित्य अकादमी का सम्मान पाने वाली इस प्रथम महिला के निधन से हिन्दी साहित्य को अपूरणीय क्षति हुई है। अमृता के न रहने से पंजाबी साहित्य का एक युग समाप्त हो गया है।

31 अगस्त, 1919 को गुजराँवाला (अविभाजित पंजाब, अब पाकिस्तान) में जन्मीं अमृता प्रीतम का बचपन का नाम अमृत कौर था। इनकी बचपन की शिक्षा लाहौर में हुई। इनके पिता का नाम करतार सिंह था, जो संस्कृत और ब्रजभाषा के विद्वान थे। इनकी माता का नाम राजबीबी था और वह गाँव माँगा, जिला गुजराँवाला की रहने वाली थीं। राजबीबी से विवाह के पूर्व इनके पिताजी 'नंद' साधु के नाम से जाने जाते थे। नंद साधु साहूकारों के लड़के थे, जिन्होंने अपनी संन्यासिन बहन से प्रेरित हो गेरुआ धारण कर लिया था और विरासत में मिली जायदाद को त्यागकर संत दयाल जी के डेरे में शामिल हो गये थे। उसी डेरे पर एक दिन उनकी मुलाकात राजबीबी से हुई और संत दयाल जी के कहने पर बाद

में उन्होंने राजबीबी से ब्याह रचा लिया। विवाह के बाद इसी नंद साधु ने अपना नाम करतार सिंह और उपनाम पीयूष रख लिया। दस वर्ष बाद जब इनके घर कन्या का आगमन हुआ, तो पीयूष के समानार्थक शब्द अमृत से इन्होंने अपनी बेटी का नाम 'अमृता' रख दिया। अमृता ने अपनी आत्मकथा रसीदी टिकट में इसका जिक्र कुछ इस प्रकार किया है "..... दयाल जी ने उस दिन जब आँखें खोली तो देखा–उनके नंद की आँखें राजबीबी के मुँह की तरफ भटक रही हैं। ..... उन्होंने नंद से कहा," नंद बेटा ! जोग तुम्हारे लिए नहीं है। यह भगवे वस्त्र त्याग दो और गृहस्थ आश्रम में पैर रखो। ..... यही राजबीबी मेरी माँ बनी और नंद साधु मेरे पिता। नंद ने जब गृहस्थ आश्रम स्वीकार किया, तो अपना नाम करतार सिंह रख लिया। कविता लिखते थे, इसलिए एक उपनाम भी रखा–पीयूष। दस वर्ष बाद जब मेरा जन्म हुआ, उन्होंने पीयूष शब्द का पंजाबी में उल्था करके मेरा नाम 'अमृता' रख दिया....।"

अमृता का मानना था कि उनके निर्माण में उनके पिता की भूमिका ज्यादा रही। जब वे 11 वर्ष की थीं, तो उनकी माता का देहांत हो गया था। उनके पिता संस्कृत और ब्रजभाषा के ज्ञाता थे और पुस्तकों से उन्हें बहुत लगाव था। इतना लगाव कि यदि किसी किताब का कोई पृष्ठ धरती पर पड़ा होता था, तो वे उसे अदब से उठा लेते थे। अगर भूल से भी किसी का पैर उस पृष्ठ पर आ जाता तो, वे नाराज हो जाते थे। अतः, अक्षरों के प्रति अदब के साथ-साथ लेखकों के प्रति सम्मान भी उन्हें पारिवारिक संस्कारों से ही मिला। बाल्यावस्था में मिली ये सीख उनमें अंतिम क्षणों तक जिन्दा रही। उन्होंने अपने समय के लेखों का हमेशा सम्मान किया। परिवार से मिली सीख का वर्णन उन्होंने कुछ इस प्रकार किया–"न केवल अक्षरों के प्रति अदब, बल्कि लेखों के प्रति अदब भी मुझे अपने पारिवारिक संस्कारों से मिला। घर में प्रकांड विद्वानों का आवगमन रहता है, उनकी संगत का प्रभाव भी मुझ पर पड़ा। देखती थी, गुरबानी के प्रकांड विद्वान भाई काहन सिंह जी पिताजी के गुरु थे। संस्कृत के विद्वान दयाल जी का चित्र पिताजी के सिरहाने लगा रहता था। उस ओर पाँव करने की भी मनाही थी। बड़ी हुई, तो अपने समय के लेखकों के लिए भी मेरे पास अदब ही था।"

16 वर्ष की आयु में अमृता का विवाह सरदार प्रीतम सिंह के साथ हुआ। सरदार प्रीतम सिंह लाहौर के अनारकली बाजार में एक बड़ी दुकान के मालिक थे। सरदार प्रीतम

सिंह के साथ विवाह के बाद अमृता-अमृत कौर से 'अमृता प्रीतम' बन गईं। सरदार प्रीतम सिंह से इनकी दो संतान हुईं–एक बेटा और एक बेटी। बेटे का नाम उन्होंने नवरोज और बेटी का नाम कंदला रखा। स्वतंत्र विचारों की मालकिन अमृता वैचारिक मतभेदों के चलते 1960 में अपने पति से अलग रहने लगीं। लेकिन अलग होने के बावजूद आपसी रिश्ता बरकरार रहा। लेखिका पत्नी की बोल्ड जीवनशैली को सरदार प्रीतम सिंह ने अपनी शर्तों पर स्वीकार किया। कहा जाता है कि प्रीतम सिंह अंत तक उनके भक्त रहे। इस बात को स्वयं अमृता ने भी स्वीकार किया– ''अलग होने का अर्थ यह नहीं था कि सलाम तक न पहुँचे। बच्चों की किसी जरूरत के समय या मेरे इन्कमटैक्स के झमेले के समय या यूँ ही कुछ दिनों बाद मैं भी फोन कर लेती थे, वे भी।''

माँ की असमय मृत्यु ने अमृता को लगभग नास्तिक बना दिया। ईश्वर से उनका विश्वास उठ गया। पिताजी ने उन्हें पूजा पाठ के लिए बार-बार प्रेरित किया, किन्तु ईश्वर के प्रति आस्था के लिए उनके दिल में कोई स्थान नहीं रहा। पिता के अनथक प्रयासों के बावजूद इनके मन में ईश्वर के प्रति श्रद्धा नहीं पनप सकी। नास्तिकता ने उनके मन में कुछ इस तरह से घर कर लिया कि पिता के प्रति भी उनके मन में आक्रोश पैदा होने लगा–''अब आँखें मींचकर अगर मैं ईश्वर का चिंतन न करूँ, तो पिताजी मेरा क्या कर लेंगे? जिस ईश्वर ने मेरी वह बात सुनी नहीं, अब मैं उनसे कोई बात नहीं करूँगी। उसके रूप का भी चिंतन नहीं करूँगी।'' लेकिन ईश्वर के प्रति समाप्त ये आस्था उनकी पहली संतान के जन्म के समय फिर से जागृत हुई। साहिर के प्रति बेपनाह नजदीकियों के कारण अमृता के मन में ये ख्वाहिश थी कि उनकी पहली संतान की सूरत साहिर जैसी हो। गर्भावस्था में उन्होंने अपने कमरे में साहिर की तस्वीरें टांगी थीं और वे हमेशा उन्हीं के ख्यालों में डूबी रहती थीं।.....''दीवानगी के इस आलम में जब 03 जुलाई 1947 को बच्चे का जन्म हुआ, पहली बार उसका मुँह देखा, तो अपने ईश्वर का यकीन हो गया और बच्चे के पनपते मुँह के साथ-साथ यह कल्पना भी पनपती रही कि उसकी सूरत सचमुच साहिर से मिलती है। साहिर लुधियानवी के प्रति उनकी चाहत दीवानगी की हद तक थी, लेकिन उसके बावजूद उनका रिश्ता किसी स्थायी मुकाम पर नहीं पहुँच सका। साहिर के प्रति इसी दीवानगी का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है–''उसके जाने के बाद मैं उसके छोड़े हुए सिगरेटों के टुकड़ों को सँभालकर अलमारी में रख लेती थी और फिर एक-एक टुकड़े को अकेले बैठकर जलाती थी और जब ऊँगलियों के बीच उन्हें पकड़ती थी, तो लगता था जैसे उसका हाथ छू रही हूँ, ...सिगरेट पीने की आदत मुझे तब ही पहली बार पड़ी थी।''

अमृता प्रीतम आधुनिक पंजाबी साहित्य का एक अत्यन्त लोकप्रिय नाम रहा। वह न केवल पंजाबी कविता, कहानी, उपन्यास, गद्य और आत्मकथा आदि विधाओं में सक्रिय रहीं, बल्कि हिन्दी में भी लोकप्रिय हुईं। उनके लेखन, व्यक्तित्व और जीवन-शैली ने साहित्य की दो पीढ़ियों को प्रभावित किया। उन्होंने भारत-विभाजन के समय पंजाब को सबसे अधिक त्रासदी झेलते हुए देखा। सन् 1947 के दौरान देश-विभाजन के साथ-साथ पंजाब विभाजन के समय हुए भयंकर रक्तपात और जनसंख्या की अदला-बदली की वे प्रत्यक्ष गवाह रहीं। अपनी इसी गवाही के रूप में उन्होंने लिखा है–''सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मूल्य कांच के बर्तनों की भाँति टूट गए थे और उनकी किरचें लोगों के पैरों में बिछी हुईं थी। किरचें मेरे पैरों में भी चुभी थीं और मेरे माथे में भी।'' भारत-पाक विभाजन की त्रासदी में जब उन्हें लाहौर छोड़कर भारत आना पड़ा, तो विभाजन की यह पीड़ा उनकी कविता 'वारिस शाह' में कुछ इस तरह जीवंत हुई :

अज्ज आक्खां वारिस शाह नूं किते कबरां विच्चो बोल
ते अज्ज किताबे-इश्क दा कोई अगला वरका खोल...।
इक्क रोई सी धी पंजाब दी, तू लिख-लिख मारे बैन
अज्ज लक्खां धीयां रोन्दियां, तैनूं वारिस शाह नूं कहन
उठ दर्दमंदा दिया दर्दिया, उठ तक अपणा पंजाब
अज्ज बेल्ले लाशां विच्छियाँ, ते लहू दी भरी चिनाब....।।

(अर्थात् आज वारिस शाह से कहती हूँ कि अपनी कब्र में से बोलो और इश्क की किताब का कोई नया पृष्ठ खोलो। पंजाब की एक बेटी रोई थी, तो तूने लम्बी दास्तान लिखी थी। आज लाखों बेटियाँ रो रही हैं और तुम से कह रही हैं कि ऐ दर्दमंदों के दोस्त-अपने पंजाब को देखो, वन लाशों से अँटे पड़े हैं, चिनाब लहू से भर गई हैं.....।)

अमृता की इस कविता का पूरे पंजाब पर इतना प्रभाव हुआ कि यह पंजाब के घर-घर में लोक-गीत की तरह ही गाई जाने लगी। उनकी इस कविता की प्रशंसा में पाकिस्तान के प्रसिद्ध लेखक अहमद नसीम कासमी ने लिखा है कि जब मैंने ये कविता पढ़ी तो मैं जेल में था। लेकिन जेल से बाहर आकर भी मैंने देखा कि लोग उनकी कविता को जेबों में रखते हैं, निकाल-निकाल कर पढ़ते हैं और रोते हैं....."वारिस शाह पर लिखी इस कविता के लिए पंजाब की नई पत्र-पत्रिकाओं ने उन पर तोहमत लगाई। सिक्खों ने भी इस बात पर नाराजगी जताई कि सिक्ख समुदाय की होते हुए, उन्होंने यह कविता गुरुनानक देव जी को संबोधित करके क्यों नहीं लिखी। यहाँ तक कि इस कविता के विरुद्ध कई और कविताएँ भी लिखी गईं।

लेकिन वे अपनी बात पर अडिग रहीं। उन्होंने स्पष्ट किया कि..... ''वारिस शाह की कविता की ये पंक्तियाँ.....'भले मोए ते बिछड़े कौन मेले'..... मेरे जहन में घूम रही थीं और मुझे लगा कि वारिश शाह कितना बड़ा कवि था कि वह हर हीर के दुःख को गा सका। लेकिन आज पंजाब की एक नहीं, लाखों बेटियाँ रो रही हैं, आज इनका दुःख कौन गाएगा? और मुझे वारिस शाह के सिवाय ऐसा कोई नहीं लगा, जिसको संबोधित करके मैं यह बात कहती। उस रात चलती हुई गाड़ी में हिलती और काँपती हुई कलम से ये पंक्तियाँ निकलीं। "अपने लेखन के कारण अमृता पंजाबी साहित्य की एक ऐसी लीजेंड बन गईं कि प्रेम के अमर शायर वारिस शाह की हीर के बाद इन्हें वारिस शाह वाली लड़की कहकर याद किया जाने लगा। अमृता ने अपनी जीवनी में लिखा है कि 1972 में जब इंग्लैंड गईं तो वहाँ बीबीसी के एक कमरे में किसी ने उनकी मुलाकात पाकिस्तान की मशहूर शायरा साहब किजलबाश से करवायी। साहब के पहले शब्द थे–अरे, यह अमृता है, जिसने वह कविता लिखी थी, वारिस शाह। इनसे तो गले मिलेंगे.....। वे कहने लगीं कि पाकिस्तान के मुलतान शहर में जश्ने वारिस शाह मनाया जाता है, जिसमें लोक गीतों, लोक नृत्य और लोक कला का प्रदर्शन होता है और मुशायरा होता है। इस जश्न की शुरुआत उनकी इसी नज्म वारिस शाह से होती है।

फोटोग्राफी से लेकर डांसिंग, सितार बजाने और टेनिस खेलने तक के शौक अमृता के व्यक्तित्व का हिस्सा रहे। मास्टर रामरखा, सिराज अहमद और फीना सितारिया से इन्होंने सितार बजाने की तालीम ली और लाहौर रेडियो स्टेशन में कई बार सितार बजाया। पारिवारिक बंदिशों के चलते ये शौक एक-एक कर पूरी तरह खिलने से पहले जैसे ही मुरझाये, वैसे ही दूसरे शौक पनपते गए। फोटोग्राफी से डांसिंग, डांसिंग से सितार और फिर सितार बजाने से टेनिस की ओर झुकाव इसका प्रमाण रहे। लेकिन इन सभी शौकों के बावजूद जिस चीज से इनका सबसे ज्यादा लगाव रहा, वह थी लेखनी। 'सिर्फ लेखक' का रूप सदा इनके एक-एक अंग के संग रहा। अपने इन्हीं शौकों का जिक्र करते हुए अमृता लिखती हैं–''....आधी शताब्दी के इस अरसे में कुछ और भी शौक लग गए थे, सबसे पहले फोटोग्राफी का था। पिताजी ने घर में डार्करूम बनाया हुआ था, इसलिए फिल्म धोते और नेगेटिव से पॉजिटिव बनाते समय खाली कागजों पर उभरते-चमकते चेहरे एक संसार रचने के समान लगते थे। कुछ अरसे तक इस शौक ने मन को पकड़े रखा, फिर डांसिंग ने अपनी ओर ध्यान खींच लिया। लाहौर में तारा चौधरी से कोई छह-आठ महीने सीखा, पर जब तारा ने स्टेज पर अपने साथ काम करने का बुलावा दिया तो घर से इजाजत नहीं मिली। शौक मुरझा गया। यह सूखे पत्तों की तरह जमीन पर गिरा, तो एक नए बीज के रूप में अंकुरित हुआ, सितार बजाने का शौक। हिन्दुस्तान के विभाजन के समय यह शौक बहुत खिले हुए रूप में था। लाहौर रेडियो स्टेशन में कई बार सितार बजाया। इसके साथ-साथ टेनिस खेलने की भी ललक थी। लाहौर के लॉरेंस गार्डन में पीछे की तरफ से लॉन पर रोज जाकर टेनिस सीखती थी। पर देश का विभाजन होते ही ये सभी शौक मेरे लिए अजनबी हो गए। इनके लिए जैसी फुरसत और जैसी सहूलियतों की आवश्यकता थी, उनके लिए जीवन में कोई स्थान नहीं रह गया, इसीलिए ये शौक बेगाने हो गए।.... लेकिन, जिंदगी के हर उतार-चढ़ाव के समय जो मेरे साथ रही थी, वह थी मेरी लेखनी। चाहे कोई घटना मुझ अकेली पर घटती, चाहे देश के विभाजन जैसा कोई कांड लाखों लोगों के साथ हो जाता, यह लेखनी मेरे अंगों के समान मेरा एक अंग बनकर रहती थी। सो, केवल यही जिंदगी का फैसला था। अन्य सब शौक जैसे खाद बनकर इसके रगों-रेशे में समा गए।''

अमृता जी ने हमेशा बेबाक और स्पष्ट लिखा। उन्हें इस बात से जरा-सा भी फर्क नहीं पड़ता था कि उनकी स्पष्टवादिता से किसी के दबे-छुपे कारमाने उजागर हो सकते हैं। उन्होंने सदैव अपनी आत्मा की आवाज सुनी और जो ठीक लगा, उसे बोल दिया। अपने बेबाक लेखन की वजह से वे परम्परावादियों की आँखों की किरकिरी रहीं। लेकिन उन्होंने जैसा चाहा, वैसा जिया और जो सच समझा, वह कहा। नैतिकता के प्रति ईमानदारी उनके व्यक्तित्व का हिस्सा रही। नैतिकता की उनकी परिभाषा में वो मुलम्मा नहीं था, जो हम समाज के लिए चढ़ाए रखते हैं, मगर भीतर से कुछ और होते हैं। वे एकदम पारदर्शी और स्पष्टवादी थीं। उनकी स्पष्टवादिता उनकी स्वयं की इन पंक्तियों से स्पष्ट होती है–''किसी समय कितने सादे शब्दों में कितने बड़े सत्य पकड़ में आ जाते हैं–वे शब्द मुझे अनेक बार याद आते हैं ...1972 की उस सरकारी मीटिंग में भी–जो देश की पच्चीस वर्षीय स्वतंत्रता के उत्सव की तैयारी के सिलसिले में बुलाई गई थी। दो घंटे की बहस के बाद कि मुशायरे और कविता दरबार किस ढंग से किए जाएँ, मैंने केवल कुछ ही मिनट लिए थे और कहा था–कविताएँ, नाटक, संगीत, जो चाहे सोचिए, पर कुछेक बुनियादी बातों को सामने रखकर। दूसरा, साधारण लोगों के मन में व्यावहारिक परिवर्तन लाने वाली बातों को सामने रखकर।..... पच्चीस वर्षों में जो किया है और जो कर सकते थे, इसका आत्म-परीक्षण सामने रखिए– एक आईना सामने रखकर और तीसरी यह बात कह सकें कि हमारे राजनीतिक नेता अपने अंदर कोई ऐसा परिवर्तन ले आएँ कि जिससे उनके प्रति लोगों में विश्वास उत्पन्न हो।''

अमृता ने हमेशा सिद्धांतों की लड़ाई लड़ी। विभाजन के समय पंजाबी संस्कृति को बाँटने की जो कोशिश की गई, उन्होंने उसके प्रति संघर्ष जारी रखा और इस संस्कृति को

विभाजित नहीं होने दिया। देश-विभाजन के दौरान दोनों ओर हुए भयंकर खून-खराबे और जनसंख्या की अदला-बदली के समय औरतों की अस्मत पर जो हमले हुए, उन्होंने उसकी पैरवी की। जिस दौर में औरतों के लिए आजादखयाली लगभग एक जुर्म जैसी होती थी, वे उस जमाने में भी आजादखयाल औरत रहीं। पुरुष-प्रधान समाज में उस समय अमृता के स्वर को विद्रोही स्वर के रूप में देखा जाने लगा। लेखन में उन्होंने कभी भी हिम्मत नहीं हारी। समाज में नारी की स्थिति के प्रति वे निरंतर व्यंग्यात्मक चोटें करती रहीं। सिद्धांतों की इस लड़ाई में उन्होंने नए लेखकों का भी हमेशा स्वागत किया। अमृता का मानना था कि इतिहास स्वयं को दोहराता है। महाभारत में युधिष्ठिर ने सिद्धांतों की लड़ाई को जारी रखा। उनका कहना था–''महाभारत में युधिष्ठिर ने चारों ओर की सेना के मध्य खड़े होकर कहा था–जो बहादुर मेरी सहायता के लिए मेरी सेना में आना चाहता है, उसका स्वागत है और यह सुनकर दुर्योधन का छोटा भाई युयुत्सु आगे बढ़ा था। इतिहास स्वयं को दोहराता है। आज वही शब्द नए लेखकों के लिए मैं दोहराती हूँ, जो सिद्धांतों की लड़ाई लड़ना चाहता है, उसका स्वागत है। यह युद्ध जारी रहेगा–मुझ तक, मेरे बाद भी और केवल आज ही नहीं, आने वाली पीढ़ियों में से भी, जो कोई लेखनी के सत्य के पक्ष में आना चाहेगा, समय उनका स्वागत करेगा।''

अमृता जी के साहित्य और जीवन से यह जाना जा सकता है कि प्रेम, सच और स्वतंत्रता का उनके लिए क्या अर्थ था। ''रसीदी टिकट'' के बाद एक इंटरव्यू में उनसे सवाल किया गया कि आपने अपनी जीवनी में कुछेक ऐसी बातें स्वीकारी हैं, जो भारतीय नारी की परम्परा के खिलाफ हैं। इस पर उनका जवाब था– ''मैंने भारतीय नारी की छवि को तोड़ा नहीं है, बल्कि उसमें कुछ जोड़ा ही है। परम्पराएँ तो हमारी जड़ हैं, उन्हें तोड़ने से तो पेड़ ही टूट जाएगा। हाँ जो झाड़-झंखाड़ उग आते हैं तो उन्हें साफ कर मैंने परम्परा को नए रूप में पेश किया है और वक्त के साथ नए परिप्रेक्ष्य में देखा है। भारतीय नारी की परम्परा स्वतंत्रता है। मैं खुद स्वतंत्र रही हूँ और मैंने स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जिया है। हमारे यहाँ अर्द्धनारीश्वर का दर्शन है। इसमें नारी और पुरुष समान हैं। लेकिन वास्तविक दुनिया में स्थिति यह है कि आधा ईश्वर (पुरुष) हाकिम हो गया है और आधा ईश्वर (स्त्री) गुलाम हो गया है। लेकिन गुलाम हुए इस आधे ईश्वर को भी अपना प्राप्य पाने का हक तो है ही।'' उनकी आत्मकथा का नाम 'रसीदी टिकट' प्रसिद्ध लेखक खुशवंत सिंह, की एक टिप्पणी से पड़ा। खुशवंत सिंह ने अमृता से कहा था–'तेरी जीवनी क्या है, बस एक-आध हादसा। लिखने लगो तो रसीदी टिकट की पीठ पर लिख जाए....।' इसी के चलते अमृता प्रीतम ने लगभग 250 पृष्ठों की अपनी जीवनी लिखी और उसे 'रसीदी टिकट' नाम दिया।

अमृता ने बेबाक ईमानदारी के साथ लिखी अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' समेत तमाम कृतियाँ साहित्य को दीं। वारिस शाह और बुल्ले शाह जैसे सूफी संतों की रचनाओं के सहारे उन्होंने विभाजन के दर्द को अपने साहित्य में उकेरा। उन्होंने सूफी साहित्य की परम्परा को आगे बढ़ाया। चिर निद्रा में सोने से पूर्व अमृता लगभग 75 पुस्तकों की विरासत छोड़ गईं। उन्होंने नाटक और संस्मरण के अलावा साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी कलम चलाई। कहानी और कविता के क्षेत्र में उनका पूरा अधिकार था। 'अमृत लहरें' और 'ठंडियाँ किरणां', 'सुनहड़े' उनके प्रमुख कविता संग्रह माने जाते हैं। उनका उपन्यास डॉ. देव था। उनके बाद पिंजर, जलावतन, जेबकतरे, कच्ची सड़क आदि 27 उपन्यास प्रकाशित हुए। उपन्यासों के अलावा उनके 12 कहानी संग्रह 14 निबंध-संग्रह भी प्रकाशित हुए। रसीदी टिकट, लाल धागे का रिश्ता तथा हुज्रे दी मिट्टी उनकी आत्मकथात्मक रचनाएँ रहीं। उनकी बहुत-सी पुस्तकों के देशी तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए। उनके उपन्यासों पर 'पिंजर' शीर्षक से फिल्म बनी। इस फिल्म में मुख्य भूमिका उर्मिला मातोंडकर और मनोज वाजपेयी ने निभाई। अमृता ने अस्वस्थ होने के बावजूद इस फिल्म के लिए दो गीत लिखे। इस फिल्म को पुरस्कार भी मिला।

साहित्य अकादमी की फेलो होने के साथ-साथ वे राज्य सभा की मनोनीत सदस्या भी रहीं। वे पहली ऐसी लेखिका थीं, जिन्हें यह सम्मान प्राप्त हुआ। अपने कविता संग्रह 'सुनहड़े' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ तथा अपनी काव्य-कृति 'कागज ते कैनवास' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। ज्ञानपीठ सम्मान पाने के साथ ही वह साहित्य अकादमी पुरस्कार पाने वाली पहली लेखिका बनीं। इन्हें दिल्ली सरकार की ओर से सहस्राब्दी कवयित्री के पुरस्कार से भी नवाजा गया। साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें पद्म भूषण से भी सम्मानित किया गया। देश के अलावा विदेशों में भी उन्हें सम्मानित किया गया। वे इंटरनेशनल वायसराय अवार्ड, बुल्गरिया के साइरिज एण्ड मेथेडियस अवार्ड से विभूषित हुईं। देश के कई विश्विद्यालयों ने उन्हें मानद डी.लिट की उपाधि प्रदान की। फ्रांस सरकार द्वारा उन्हें 'ऑफिसर डि/ऑर्डर डि आर्ट्स ए डि लेटर्स' की उपाधि प्रदान की। अमृता ऑल इंडिया रेडियो लाहौर से संबद्ध रहीं और उन्होंने आकाशवाणी दिल्ली में भी काम किया। लगभग 40 वर्षों तक उन्होंने पंजाबी मासिक पत्रिका 'नागमणि' के संपादक के रूप में कार्य किया।

अमृता जीवन के अंतिम वर्षों तक सक्रिय होकर लिखती रहीं उन्होंने साहित्य एवं संस्कृति को जिस ऊँचाई पर पहुँचाया, वह अद्वितीय है। पंजाबी और हिन्दी साहित्य में उनकी उपस्थिति बेजोड़ है। ऐसे करिश्माई व्यक्तित्व सिर्फ देह त्यागते हैं, मरते नहीं हैं, बल्कि अमर हो जाते हैं और साहित्य जगत में सदैव अविस्मरणीय रहते हैं।

❑❑❑

प्रो. अमर्त्य सेन–व्यक्तित्व एवं विचार

● सत्य प्रकाश सिंह
नई दिल्ली क्षेत्रीय कार्यालय

विगत कुछ दशकों में शायद ही कोई भारतीय, अमीर या गरीब, शिक्षित अथवा अशिक्षित, शहरी अथवा ग्रामीण रहा हो, जिसने प्रो. अमर्त्य सेन की चर्चा न सुनी हो। 14 अक्तूबर 1998 को जब प्रो. सेन को अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार के लिए जुने जाने की घोषणा की गई, तो उस समय हर भारतीय का सिर गर्व से आसमान छूने लगा। प्रो. सेन का जन्म 03 नवम्बर, 1933 को, एशिया के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन, बोलपुर, पश्चिम बंगाल में हुआ था। इनके माता-पिता का नाम टी.एन. सेन तथा अमिता सेन था। स्वयं गुरुवर ने इनका नामकरण किया था। प्रो. सेन की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा शान्ति निकेतन के सुरम्य वातावरण में हुई। 1953 में प्रो. सेन ने प्रेसिडेंसी कालेज कलकत्ता से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। अपने अध्यापन जीवन के 32 वर्षों में उन्होंने कलकत्ता के जादवपुर विश्वविद्यालय से लेकर दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स और लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स तक दुनिया के अनेक विश्वविद्यालयों में अर्थशास्त्र एवं दर्शन की शिक्षा दी। 1998 में ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेध ने प्रो. सेन को दुनिया भर में सर्वप्रतिष्ठित ट्रिनिटी कालेज, लन्दन के सर्वाधिक सम्मानित 'मास्टर' के पद पर नामित किया।

प्रो. सेन की कृतियाँ

प्रो. सेन ने एक से एक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की, जिनका महत्व दुनिया के अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा निर्विवाद रूप में स्वीकार किया गया। प्रो. सेन का शोधकार्य ''च्वाइस ऑफ टेक्नीक'' (तकनीक का चयन)

नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था। इस अपने विषय-क्षेत्र में संदर्भ पुस्तक का सम्मान प्राप्त है। 1970 में सेन की महत्वपूर्ण पुस्तक ''कलेक्टिव च्वाइस एंड सोशल वेलफेयर'' (सामूहिक विकल्प और समाज कल्याण) प्रकाशित हुई। कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अध्याय में सेन की यह पुस्तक मील का पत्थर साबित हुई। इस पुस्तक का महत्व मात्र इसलिए ही नहीं है कि इसमें प्रो. ऐरो के 'असम्भाव्यता के सिद्धान्त' का खण्डन किया गया है, बल्कि इसलिए भी है कि इसमें प्रो. सेन के सकारात्मक व्यक्तित्व एवं उनकी लोकतंत्र के प्रति दृढ़ आस्था का भी परिचय मिलता है। सन् 1973 में प्रो. सेन की एक अन्य पुस्तक ''ऑन इकॉनॉमिक इनइक्वैलिटी'' (आर्थिक असमानता पर) प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में प्रो. सेन ने बताया कि 'गरीबों में गरीब' अर्थात् गरीबी के निम्नतम स्तर पर रहने वाले व्यक्ति को यदि थोड़ा मिलता है, तो गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या में ज्यादा कमी नहीं आएगी। इस पुस्तक में प्रो. सेन ने गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की आय में असमानता मापने के लिए एक नया फार्मूला दिया, जिसे 'सेन इंडेक्स' (सेन फार्मूला) के नाम से जाना जाता है। इसी फार्मूले के आधार पर पाकिस्तानी अर्थशास्त्री प्रो. महबूबुल हक ने मानव विकास सूचकांक की गणना की, जिसमें प्रो. सेन भी एक सहयोगी सदस्य थे।

सन् 1981 में प्रो. सेन की सर्वाधिक चर्चित पुस्तक ''पावर्टी एंड फेमिन्सः ऐन एसे ऑन एनटाइटिलमेंट एण्ड डेप्राइवेशन'' प्रकाशित हुई। यह पुस्तक शायद उस दृश्य का परिणाम है, जिसे प्रो. सेन ने अपने बचपन में 1943 के 'विकट बंगाल अकाल' के रूप में देखा था। इस पुस्तक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि इसमें प्रो. सेन ने इस भ्रान्ति को गलत साबित करते हुए कि 'अकाल अनाज की कमी का परिणाम होता है,' यह सिद्ध किया कि अकाल 'क्रय शक्ति' की कमी एवं गलत वितरण प्रणाली का परिणाम होता है।

इसके अतिरिक्त प्रो. सेन की अन्य कृतियों में इंडिया–इकॉनॉमिक डेवलपमेंट एंड सोशल अपारचुनिटीज, रिसोर्सेज, वैल्यूज एण्ड डेवलपमेंट, ऑन एथिक्स एण्ड इकॉनॉमिक्स आदि महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान समय में प्रो. सेन 'दर्शन' पर अपने विचारों को कलमबद्ध कर रहे हैं, जिसमें भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन पर उनके विचारों का अवलोकन किया जा सकेगा।

प्रो. सेन के आर्थिक एवं सामाजिक विचार

अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध व्यक्ति, जो कि समाज का एक अंग है, की आर्थिक क्रियाओं से है। यह अर्थशास्त्र समाज के सामाजिक परिवर्तनों से भी बहुत कुछ प्रभावित होता है और प्रभावित करता है। एक अर्थशास्त्री होने के नाते प्रो.

सेन एक उच्च कोटि के समाजशास्त्री भी हैं और समाज के तमाम ज्वलन्त पहलुओं को उन्होंने अपनी पुस्तकों में स्थान दिया है। प्रो. सेन के विचारों को यहाँ पर संक्षिप्त रूप में कलमबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

आर्थिक विकास एवं प्रो. सेन

आज के भौतिकतावादी समाज में 'अर्थ' सर्वाधिक प्रधान है और यही कारण है कि व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र, तीनों के लिए आर्थिक विकास चरम लक्ष्य है। आर्थिक विकास का सामान्य अर्थ है–अधिक उत्पादन अथवा अधिक आय यद्यपि आर्थिक विकास एक समष्टिवादी विचारधारा है, जिसमें अन्य प्रकार के विकास, यथा–तकनीकी, संरचनागत विकास आदि भी शामिल किए जाते हैं, परन्तु इसका सर्वाधिक सरोकार उत्पादन अथवा आय वृद्धि से ही है।

प्रो. अमर्त्य सेन ने आर्थिक विकास की इस विचारधारा को एक नई दिशा दी और उसे 'अर्थ' की परिधि से बाहर लाने का प्रयास किया। प्रो. सेन के अनुसार-आर्थिक विकास का आशय 'मानव क्षमताओं' में विकास से लगाया जाना चाहिए। सेन की इस विचारधारा को अर्थशास्त्र में 'Sen's Capability Notion' के नाम से जाना जाता है। सेन का मत है कि 'आर्थिक विकास मात्र लोगों के लिए नहीं, बल्कि लोगों द्वारा होना चाहिए'। यही मानव क्षमता में विकास का सही अर्थ है। सेन की विकास संबंधी यह परिभाषा, अब्राहम लिंकन की लोकतंत्र की परिभाषा के दर्शन पर आधारित प्रतीत होती है।

'मानव क्षमताओं' में विकास को आर्थिक विकास का सही मानदण्ड मानते हुए, प्रो. सेन ने स्पष्ट किया कि वही सच्चा आर्थिक विकास है–

☆ **जो व्यक्ति की औसत आयु में वृद्धि करे (Longevity)**–आर्थिक विकास व्यक्ति में अच्छी शिक्षा लेने की 'क्षमता' उत्पन्न कर सके। इसका आशय है कि आर्थिक विकास तभी पूर्ण है, जब वह व्यक्तियों को शिक्षा के लिए अवसर प्रदान कर सके।

☆ **जो सामाजिक क्षमताओं में विकास कर सके**– इसका आशय है कि उत्पादन की अपेक्षा उसका वितरण ज्यादा महत्वपूर्ण है। आर्थिक विकास तभी पूर्ण हो सकता है, जन एवं धन का वितरण अधिकाधिक समान हो।

इस प्रकार, प्रो. सेन ने आर्थिक विकास की परिभाषा को एक नया आयाम दिया और स्पष्ट किया कि आर्थिक विकास उत्पादन-वृद्धि से अधिक अन्य अनेक तत्वों से भी सम्बन्धित है। प्रो. सेन का स्पष्ट मत है कि यह आर्थिक विकास, जो मानव क्षमताओं में वृद्धि करने में अक्षम है, सही अर्थों में अधूरा आर्थिक विकास है।

आर्थिक उदारीकरण एवं सेन

अंकटाड (UNCTAD) द्वारा हाल ही में प्रकाशित 'विकास रिपोर्ट' में स्पष्ट किया गया है कि 'सूचना आर्थिक विकास की कुंजी है।' दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ज्ञान आर्थिक विकास का सर्वोत्तम साधन है। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. फ्रेडरिक वान हेयक ने लिखा है–"स्वतंत्र व्यापार-व्यवस्था में ज्ञान सर्वोत्तम तरीके से विकसित एवं वितरित होता है।" इस अवस्था में, जबकि तीव्रतर आर्थिक विकास दुनिया के लगभग सभी राष्ट्रों का एकमात्र लक्ष्य है, आर्थिक उदारीकरण एवं स्वतंत्र व्यापार उसका एक अच्छा माध्यम बन गया है। यही नहीं, विकासवादी अर्थशास्त्री प्रो. पीटर वायर का मत है कि–"सरकारी सहायता आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, यह तथ्य सर्वथा उपयुक्त नहीं है।" इस विचारधारा ने निजीकरण को काफी बल दिया, जो आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण अंग है।

आर्थिक उदारीकरण के सम्बन्ध में प्रो. सेन के मत को लेकर अधिकांश लोगों में भ्रांति की स्थिति है। अधिकांश लोग यह समझते हैं कि आर्थिक विकास के लिए सरकारी भागीदारी पर अधिक बल देने वाले प्रो. सेन आर्थिक उदारीकरण के विरोधी हैं। परन्तु आर्थिक विकास की प्रो. सेन की परिभाषा एवं देश-विशेष की स्थिति को दृष्टिगत करते हुए यह भ्रांति स्वतः दूर हो जाती है। वस्तुतः प्रो. सेन आर्थिक उदारीकरण के विरोधी नहीं हैं, बल्कि उनका सुझाव है कि अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में एक साथ उदारीकरण के बजाय प्रारम्भिक अवस्था में भूमि-सुधार, शिक्षा-व्यवस्था, परिवार कल्याण एवं जन-स्वास्थ्य आदि व्यवस्थों को मजबूत किया जाना चाहिए। स्पष्ट है कि इसके लिए सरकारी भागीदारी की नितान्त आवश्यकता है। प्रो. सेन का स्पष्ट मत है कि बाजार व्यवस्था में संसाधनों का आवंटन लाभप्रदता पर निर्भर करता है। ऐसी अवस्था में समाज का एक बड़ा वर्ग अर्थात् गरीब वर्ग, जिसके पास पर्याप्त क्रय-शक्ति नहीं है, वह राष्ट्र के बहुमूल्य साधनों के लाभ से वंचित रह जाता है। अतः लोकतांत्रिक व्यवस्था में कल्याणकारी सरकारों का यह प्राथमिक दायित्व है कि समाज के इस वर्ग को पर्याप्त अवसर प्रदान करें।

संक्षेप में प्रो. सेन आर्थिक उदारीकरण के नहीं, बल्कि आर्थिक उदारीकरण के 'क्रम' के विरोधी हैं। यही कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में प्रो. सेन का स्पष्ट मत है कि सरकार को प्रथमतः शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं पर ध्यान देना चाहिए। वस्तुतः दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लिए यही सर्वोत्तम साधन है।

जनसंख्या वृद्धि, आर्थिक विकास एवं सेन

प्रो. माल्थस ने लिखा है–"जनसंख्या में खाद्य सामग्री की अपेक्षा तीव्रतर गति से बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।" उनका मत था कि यदि जनसंख्या वृद्धि को नहीं रोका गया, तो निश्चित रूप से यह आर्थिक विकास के लिए घातक होगा। समान्य रूप से यह धारणा है कि जनसंख्या वृद्धि, मुख्य रूप से भारत की

आर्थिक वृद्धि में सबसे बड़ी बाधा है।

इस संदर्भ में, प्रो. सेन ने एक अध्ययन कर इस धारणा को काफी हद तक निर्मूल साबित करने का प्रयास किया। प्रो. सेन ने 1991 की जनसंख्या को आधार मानते हुए भारत तथा चीन में जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक वृद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए स्पष्ट किया कि यदि 1994-95 में भारत, चीन की जनसंख्या वृद्धि दर (लगभग 1.5%) प्राप्त कर ले, तो उसकी वर्तमान आर्थिक वृद्धि (लगभग 6%) में मामूली वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार यदि चीन में भारत की जनसंख्या वृद्धि दर (लगभग 2.11%) हो, तो उसकी आर्थिक वृद्धि दर (लगभग 9%) में मामूली गिरावट होगी।

इस प्रकार प्रो. सेन ने स्पष्ट किया कि जनसंख्या वृद्धि नहीं, बल्कि 'जनसंख्या की गुणवत्ता' आर्थिक विकास को अधिक प्रभावित करती है। जनसंख्या की गुणवत्ता मुख्य रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कार्य के प्रति समर्पण एवं अभिरुचि पर निर्भर करती है।

नारी-उत्थान एवं प्रो. सेन

यह सर्वविदित है कि प्रो. सेन संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा प्रकाशित 'मानव विकास रिपोर्ट' तैयार करने वाले विद्वानों में से एक हैं। 1995 की मानव विकास रिपोर्ट पूर्णतया नारी-समाज के विभिन्न पहलुओं का व्यापक ब्यौरा उपलब्ध कराती है। इसके प्रारम्भ में ही, बड़े रोमांचक शब्दों में लिखा गया है–"यदि मानव विकास की धारा को नारी-उन्मुख नहीं बनाया गया, तो मानव विकास के समस्त प्रयास व्यर्थ साबित होंगे।" (Human Development, if not Engendered, Endangered.) इस कथन मात्र से नारी-समाज के प्रति प्रो. सेन के सम्मान एवं दृष्टिकोण का अन्दाजा लगाया जा सकता है। रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि नारी-समाज का योगदान विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में पुरुष समाज की अपेक्षा तीन गुने से भी अधिक है। परन्तु चूँकि नारी की अधिकांश सेवाओं के बदले कोई नकद भुगतान नहीं किया जाता, अतः उसे राष्ट्रीय आय का हिस्सा नहीं माना जाता। जरूरत है नारी के उस योगदान को पहचानने की और उसकी भागीदारी बढ़ाने की।

नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के पश्चात अपनी भारत यात्रा के दौरान प्रो. सेन ने स्पष्ट किया कि यदि भारत में जनसंख्या नियंत्रण को प्रभावी बनाना है, तो जरूरी है कि भारत की आर्थिक नीति को ज्यादा से ज्यादा नारी-उन्मुख बनाया जाए। इसके लिए नारी शिक्षा, नारी की सामाजिक स्थिति एवं नारी की आर्थिक एवं राजनीतिक भागीदारी को सशक्त बनाने की नितान्त आवश्यकता है।

इस प्रकार प्रो. सेन का स्पष्ट मत है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया को स्थायी बनाने, जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने, विकास को नई दिशा देने के दृष्टिकोण से, समाज में नारी को यथोचित स्थान देना नितान्त आवश्यक है।

आर्थिक विकास, भ्रष्ट्राचार एवं प्रो. सेन

दुनिया के अल्पविकसित राष्ट्रों के विकास में बाधक तत्वों की चर्चा करते हुए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री प्रो. गुन्नार मिर्डाल ने लिखा है कि विकासशील राष्ट्रों के तीव्रतर आर्थिक विकास में बाधक आर्थिक एवं गैर-आर्थिक तत्वों की चर्चा करते समय, भ्रष्टाचार को बराबर का महत्व देना चाहिए। उनका मत था कि भ्रष्टाचार के कारण विकासशील राष्ट्रों के सीमित बहुमूल्य संसाधन, वांछित क्षेत्रों में नहीं लग पाते और इस कारण अल्प विकास का दुष्चक्र प्रभावी बना रहता है। भारतीय व्यवस्था में व्याप्त इस 'रोग' को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने भारत को "सॉफ्ट स्टेट" कह कर सम्बोधित किया था। अपने भारत दौरे के समय प्रो. सेन ने भी भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में भ्रष्टाचार को सबसे बड़ा बाधक तत्व स्वीकार किया है। वस्तुतः, यदि देखा जाए, तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारी नीतियाँ नहीं, बल्कि नीतियों का सही क्रियान्वयन न होना ही विकास की गति में सबसे बड़ा बाधक तत्व है। सरकारी सहायता वांछित व्यक्ति तक उस रूप में नहीं पहुँच पा रही है, जिस रूप में वह आरम्भ होती है। अतः, आर्थिक विकास को गति देने के लिए आवश्यक है कि भ्रष्टाचार पर प्रभावी नियंत्रण लगाया जाए।

गरीबी, असमानता एवं प्रो. सेन

सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि गरीबी एक सापेक्ष अवधारणा है। प्रो. राउन्ट्री ने लिखा है–"गरीबी, देखने वाले की आँखों में निवास करती है।"(Poverty lies in the eyes of beholders) किसी भी समकालिक समाज में प्रचलित एवं स्वीकृत जीवन-स्तर को प्राप्त कर सकने में अक्षम व्यक्ति को गरीबी की परिभाषा में सम्मिलित किया जाता है। इसी मान्यता पर आधारित, गरीबी रेखा की परिकल्पना की गई, जो गरीबी मापन की 'सिर गणना' (Head Count) विधि कहलाती है।

प्रो. सेन गरीबी एवं असमानता की इस गणना-विधि के प्रबल विरोधी रहे हैं। उनका मत है कि गरीबी एवं असमानता को मापने की वर्तमान विधियाँ बहुत सारी सूचनाओं को समाहित नहीं करतीं अथवा वे तुलनात्मक अध्ययन में सक्षम नहीं है। प्रो. सेन ने बताया कि गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियों के जीवन-स्तर में परिवर्तनों का अंदाजा वर्तमान प्रणाली में नहीं लगाया जा सकता। यदि अन्य चीजों के समान रहते हुए गरीबी रेखा के नीचे रहने वाला व्यक्ति और गरीब हो जाता है, तो असमानता में और अधिक वृद्धि होती है, जो वर्तमान गणना प्रणाली से स्पष्ट नहीं होती। इस दृष्टिकोण से प्रो. सेन ने 'सेन इंडेक्स' नाम से एक नया

फार्मूला बनाया, जो गरीबी और असमानता मापने का एक बेहतर तरीका है।

सारांश रूप में, प्रो. सेन को जो नोबेल पुरस्कार मिला है, वह उनके जीवन की चरम उपलब्धि है। यह पुरस्कार उनके कार्यों का परिणाम है। प्रो. सेन द्वारा अर्थशास्त्र में किए गए समस्त कार्यों को मुख्य रूप से छह चरणों में बाँटा जा सकता है–

- अपने अर्थशास्त्री जीवन के प्रथम चरण में प्रो. सेन का जोर 'विकास अर्थशास्त्र के सूक्ष्म तत्व' (Micro-theoretic foundations for development economics) जैसे महत्वपूर्ण विषय पर रहा। 'तकनीक का चयन' (Choice of Techniques) विषय पर अपने कार्य द्वारा प्रो. सेन ने विकास अर्थशास्त्र को एक नया आयाम दिया।
- अपने लेखन के दूसरे चरण में प्रो. सेन ने 'पूँजी सिद्धान्त एवं विकास' को अपना विषय चुना। इस दिशा में उनके द्वारा किए गए कार्य 70 के दशक में छात्रों एवं अध्यापकों में चर्चा के विषय रहे।
- तीसरे चरण में प्रो. सेन ने सामाजिक चुनाव को अपना विषय बनाया और कल्याणकारी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में स्वर्णिम अध्याय लिखा। लोगों का मत है कि यह प्रो. सेन के जीवनकाल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है।
- चौथे चरण में प्रो. सेन ने आय में असमानता विषय पर अपनी महत्वपूर्ण रचना लिखी। 'सेन इंडेक्स' इस विषय में सर्वथा नवीन उपकरण है।
- पाँचवें एवं छठे चरण में प्रो. सेन ने गरीबी एवं अकाल को अपने लेखन का विषय बनाया। इसमें उन्होंने उस चिर-स्वीकृत धारणा, कि अकाल अनाज की कमी के कारण होता है, को गलत साबित कर बताया कि यह क्रय-शक्ति की कमी के कारण होता है।

प्रो. सेन को 'भारत रत्न' की उपाधि से सम्मानित करने का भारत सरकार का निर्णय सर्वथा उचित था। प्रो. सेन द्वारा सुझाया गया आर्थिक फार्मूला भारत की आर्थिक वृद्धि एवं इसकी दशा में सुधार लायेगा, हम यही कामना करते हैं। ❑❑❑

गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ

- संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उप समिति ने नई दिल्ली क्षेत्रीय कार्यालय का राजभाषा कार्यान्वयन निरीक्षण 08 अप्रैल, 2016 को संपन्न किया। इस निरीक्षण के उपरान्त सिडबी को एक आभार पत्र भी प्रदान किया।
- भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वित्तीय वर्ष 2014-15 हेतु भारतीय रिजर्व बैंक राजभाषा शील्ड प्रतियोगिता आयोजित की गयी। उत्कृष्ट हिन्दी कार्यान्वयन के लिए सिडबी को 'क' एवं 'ख' क्षेत्र में प्रोत्साहन पुरस्कार तथा 'ग' क्षेत्र में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है। दिनांक 25 मई, 2016 को भारतीय रिजर्व बैंक, मुंबई में आयोजित भव्य पुरस्कार वितरण समारोह में भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर डॉ. रघुराम जी. राजन के कर-कमलों से सिडबी के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक डॉ. क्षत्रपति शिवाजी एवं महाप्रबंधक (हिंदी) श्रीमती अनिता सचदेवा द्वारा ये पुरस्कार ग्रहण किए गए। इस अवसर पर भारतीय रिजर्व बैंक के उप गवर्नर श्री एस.एस. मूंदड़ा भी उपस्थित थे।
- भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, वित्तीय सेवाएँ विभाग द्वारा पुणे में दिनांक 3 एवं 4 जून 2016 को राजभाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के सचिव श्री अनूप कुमार श्रीवास्तव द्वारा सिडबी की पत्रिका 'संकल्प' के नए अंक का विमोचन किया गया।
- लखनऊ क्षेत्रीय कार्यालय के अंतर्गत आने वाले समस्त शाखा कार्यालयों के प्रभारियों की समीक्षा बैठक 16 मई, 2016 को लखनऊ स्थित सम्मेलन कक्ष में आयोजित हुई। इस अवसर पर श्रीमती अनिता सचदेवा, महाप्रबन्धक ने शाखा प्रभारियों को राजभाषा कार्यान्वयन की अपेक्षाओं से अवगत कराया।
- नई दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में 22 जून से 28 जून, 2016 के दौरान राज्य स्तरीय बैंकर समिति, नई दिल्ली के तत्वावधान में राज्य स्तरीय साक्षरता शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सिडबी ने भी एक स्टॉल लगाया था। इस अवसर पर सिडबी के स्टॉल देखने श्री वेंकैया नायडू, केन्द्रीय संसदीय कार्य मंत्री एवं श्री जयंत सिन्हा, केन्द्रीय वित्त राज्य मंत्री पहुंचे।
- सिडबी के मुम्बई कार्यालय में ग्रेड डी एवं ग्रेड ई अधिकारियों के लिए 18 जून, 2016 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सभी वरिष्ठ अधिकारियों को राजभाषा कार्यान्वयन की अपेक्षाओं से अवगत कराया गया।
- इस तिमाही के दौरान प्रधान कार्यालय में 24 मई, 2016 को हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसके अलावा हमारे नई दिल्ली क्षेत्रीय कार्यालय, अहमदाबाद क्षेत्रीय कार्यालय, कोयंबत्तूर क्षेत्रीय कार्यालय, गुड़गांव शाखा, गांधीधाम शाखा एवं हुबली शाखा में हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन किया गया।

प्रगतिशील साहित्य के पुरोधा–भीष्म साहनी

● सुमन सिंह
चंडीगढ़ कार्यालय

11 जुलाई, 2003 को जब प्रकृति नवजीवन से सिंचित होकर वातावरण को स्निग्धता प्रदान कर रही थी, चारों और मानसून की फुहारें अपने स्नेहिल स्पर्श से वसुंधरा के वात्सल्यमयी आँचल को जीवन रस से सराबोर कर रही थीं, हिन्दी साहित्य जगत का एक महान रचनाकार और शलाका पुरुष अपनी इहलीला समाप्त कर प्रकृति की गोद में सदा-सदा के लिए, चिरनिद्रा में लीन हो गया।

भीष्म साहनी एक ऐसे सौम्य, सरल, सहृदय एवं परिपक्व रचनाकार रहे हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को अपनी अमूल्य रचनाओं से समृद्ध किया है। उन्होंने अपनी सहज व सामान्य कृतियों से रचना-जगत की एक ऐसी आधारशिला निर्मित की है, जो हिन्दी साहित्य के साथ-साथ अन्य विधाओं, जैसे–रंगमंच व अभिनय को भी दृढ़ता प्रदान करती है। भीष्म जी ने अपनी रचनाओं से समाज के अनछुए पहलुओं को पैनी अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने एक ऐसा वातावरण तैयार किया है, जिसमें समाज के विभिन्न धरातलों से उभरकर सजीव चित्र निर्मित हुए हैं। भीष्म जी ने जनसमुदाय का पथ प्रशस्त किया है तथा अपनी लेखनी से उसे अप्रतिम अभिव्यंजना एवं वाणी प्रदान की है।

भीष्म साहनी का जन्म 08 अगस्त, 1915 को रावलपिंडी (पाकिस्तान) में हुआ था। हिन्दी व संस्कृत विषय की इनकी आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। अंग्रेजी एवं उर्दू की औपचारिक शिक्षा स्कूल में प्राप्त करने के उपरांत, गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की डिग्री प्राप्त की। यही नहीं, अध्ययन में रुझान होने के चलते भीष्म जी ने पंजाब विश्वविद्यालय से पीएच.डी की उपाधि भी हासिल की। यह इनके व्यक्तित्व की विविधता ही रही कि भारतीय जन नाट्य संघ से जुड़े होने के साथ-साथ, इन्होंने अमृतसर में तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज में अध्यापन भी किया। भीष्म जी के बारे में यह अटूट सत्य है कि जीवन-निर्वाह हेतु अपनी कर्मठता के चलते उन्होंने चाहे जितनी भी नौकरियाँ समय- समय पर की हों, किन्तु रचनाधर्मिता से कभी विरत नहीं हुए। प्रायः देखा गया है कि साहित्यकार और कलाकार किसी सीमा में बँधकर नहीं रहते हैं, उनके लिए तो पूरा मानव-समाज, या यों कहें कि पूरा विश्व ही उनकी लेखनी का विस्तार क्षेत्र है। यह बात भीष्म साहनी के लिए भी उतनी ही सटीक है, जितनी किसी अन्य शीर्ष रचनाकार के लिए। अपने मास्को प्रवास के दौरान भीष्म जी ने लगभग दो दर्जन रूसी पुस्तकों का अनुवाद किया व साथ ही, 'नई कहानियाँ' का सौजन्य सम्पादन किया। इसके अलावा, वे प्रगतिशील लेखक संघ तथा अफ्रो-एशियाई लेखक संघ से भी जुड़े रहे।

अभिनय के प्रति लगाव के चलते ही वे भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) से सम्बद्ध रहे। कई फिल्मों में बतौर कलाकार अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इनमें 'मोहन जोशी हाजिर हो' प्रमुख है। 'मिस्टर एण्ड मिसेज अय्यर' में उनकी भूमिका देखते ही बनती है। मुसलिम चरित्र के रूप में भीष्म जी ने जो प्रभावी अभिनय किया है, वह एक मँजे हुए कलाकार के मानिंद जेहन में उतर जाता है।

भीष्म जी में अभिनेता बनने का जुनून उनके इप्टा से जुड़ने का प्रेरक था। उन्होंने लिखा–''इप्टा का आकर्षण बेशक अत्यधिक था। 1947 के जाड़ों में अहमदाबाद में इप्टा का अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ। इस

अवसर पर देश भर के इप्टा के रंगकर्मी अलग-अलग प्रदेशों से अपने कार्यक्रम लेकर आए थे। एक मंच पर विभिन्न भाषाओं में रंगारंग कार्यक्रम देखने का सुअवसर मिला। लोकभाषाओं में लोकनाट्य शैलियों के कार्यक्रम, साथ में नए-नए प्रयोग, बंगाल के रंगकर्मी चलते-फिरते छायाचित्रों का एक बिल्कुल अनूठा प्रयोगात्मक कार्यक्रम लेकर आए थे। तीन दिन तक यह उत्सव रहा, जो भुलाए नहीं भूलता। इप्टा ने अद्‌भुत मंच जुटाया था। देश की समृद्ध संस्कृति को एक सूत्र में पिरोने की दृष्टि से एक नई जागरूक दृष्टि से प्रेरित, रचनात्मक ओजस्विता लिए हुए।''

भीष्म जी ने मानव-मन की भावनाओं को भी उसी तन्मयता से अपनी रचनाओं में वाणी दी है, जितना किसी सामाजिक पहलू को। उनके शब्दों में ''.....मानसिक तुष्टि के लिए अपने व्यक्तित्व को जीवंत रखने के लिए हर व्यक्ति अपने अहं को सुरक्षित रखता है, भले ही कोई व्यक्ति कितना ही नगण्य और निस्सहाय क्यों न हो। फिर भी जिन्दा रह पाने के लिए उसका अहं उसकी रक्षा करता है, उसका अवलम्ब बनता है और मानवीय रिश्तों के कच्चे किन्तु विविध रूपों के रंगीन धागों के सहारे इंसान अपने अहं को जिन्दगी में बनाए रखता है।''

भीष्म साहनी जी का पहला कहानी संग्रह 'भाग्यरेखा' 1953 में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात उन्होंने 'पहला पाठ' (1957) और 'भटकती राख' (1966) तथा 'झरोखे' (1967) नामक संग्रहों के माध्यम से एक अप्रतिम और प्रौढ़ कथाकार के रूप में अपनी पहचान बनाई। परन्तु, भीष्म साहनी को सर्वाधिक प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि 'तमस' (1970) से मिली और यह उपन्यास कालजयी साबित हुआ। इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी नवाजा गया। भारत विभाजन की पृष्ठभूमि पर इससे पूर्व यशपाल जी ने 'झूठा सच' एवं खुशवंत सिंह ने 'पाकिस्तान मेल' उपन्यास लिखा, जो अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। 'तमस' जहाँ एक ओर आजादी से पूर्व हुए सांप्रदायिक दंगों के अनछुए पहलुओं को उजागर करता है, वहीं जीवन के विभिन्न सवालों को इसमें इतनी बेबाकी और शिद्दत से उठाया गया है कि देखकर लगता है कि जीवन के प्रति उनकी आस्था कितनी दृढ़ थी। इस उपन्यास में भीष्म जी ने सांप्रदायिकता के सहारे मानवीय संवेदनाओं को नजर अंदाज करने वाले तत्वों का ईमानदार चित्रण किया है। सांप्रदायिकता के विविध पहलू इस उपन्यास में उद्‌घाटित हुए हैं और गरीबी, बेबसी एवं बदहाली अपने गहन रूप में दिखाई पड़ती है।

यह निर्विवाद सत्य है कि समाज के विभिन्न सांप्रदायिक दंगों के शिकार मुख्यतः गरीब तबके के लोग ही होते हैं और ये निर्दोष होते हैं। गरीब न तो हिन्दू होते हैं न मुसलमान, बल्कि सिर्फ इंसान। इंसानियत को बचाए रखना हमारे देश की आज सबसे अहम समस्या है और मानव के व्यक्तित्व की परिभाषा भी। यह उपन्यास साम्प्रदायिक विचारों और शक्तियों के अमानवीय और क्रूर पहलू को खोलकर हमारे सामने रख देता है, जहाँ से हिन्दू और मुसलमान अपनी साझा विरासत, साझा जीवन शैली अपना सकें। 'तमस' आधुनिक युग के त्रासद और करुण अनुभव को व्यक्त करता है। 1970 के आसपास लिखे इस उपन्यास की मूल चिन्ता-साम्प्रदायिकता हमें आज भी बड़े पैमाने पर देखने को मिलती है। भीष्म जी के लेखन की रचनात्मकता का स्रोत साधारण जनता ही है। उनके उपन्यासों में मानवीय संवेदना की परख व मानव-मूल्यों की पक्षधरता देखने को मिलती है। प्रेमचंद की परम्परा को भीष्म जी ने बखूबी आगे बढ़ाया। उनके रचनात्मक व्यक्तित्व में प्रेमचंद की सादगी और मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। ग्रामीण परिवेश का हूबहू चित्रण, गरीब तबके के लोगों के प्रति विशेष अनुराग और अपनी लेखनी से सामाजिक उत्थान करने की पहल, यही सब गुण थे प्रेमचंद में, जो हमें भीष्म जी में भी दिखाई देते हैं।

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह ने ठीक ही लिखा है कि भीष्म जी प्रेमचंद की परंपरा के सबसे बड़े कथाकार ही नहीं माने जाते, अपितु उपन्यासकार भी। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी के यथार्थवादी लेखक के रूप में भीष्म साहनी अग्रगण्य ही नहीं, बल्कि व्यापक रूप से पढ़े जाने वाले लोकप्रिय कथाकार हैं। भारत विभाजन की विभीषका और आजादी के बाद की जटिलताओं का उन्होंने बहुत गहराई से अनुभव किया था। अतः सभी समस्याओं को उन्होंने महाकाव्यात्मक फलक पर अंकित किया है। भीष्म जी ने जहाँ उपन्यास लिखे हैं, वहीं नाटकों के क्षेत्र में भी उनकी गहरी पैठ थी। 'कबिरा खड़ा बजार में' (1981), 'हानूश' (1977), 'मुआवजे' (1993) जैसे ख्यातिप्राप्त बहुचर्चित नाटक भी उन्होंने लिखे। अभिनय का क्षेत्र भी उनसे अछूता नहीं रहा। उनका अभिनय इस तथ्य को उजागर करता है कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। जनमानस से जुड़े कथाकार के रूप में भीष्म साहनी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। कृष्णा सोबती भीष्म जी के इस गुण को बखूबी उद्‌घाटित करती हैं–

''उनका रचना संसार बहुत बड़ा और व्यापक है और भारतीय जनमानस से जुड़ा है। रचनाओं की गहराई में उनके मूल्य, सरोकार और आस्थाएँ प्रतिबिम्बित होती हैं। उन्होंने एक लम्बी रचना-यात्रा में एक बड़ा और विविध रचना संसार, विविध विधाओं में सृजित किया। वे सिर्फ उपन्यासकार ही नहीं, कहानीकार, नाटककार और अभिनेता भी थे। यह भी एक

सोचने की बात है कि जिन विश्वासों से और जिन मूल्यों को सामने रखकर उन्होंने अपनी लेखन-यात्रा शुरू की, उसे अंत तक वे निभाते चले गए।''

भीष्म साहनी का कथा-संसार व्यापक लोकतांत्रिक संवेदना और करुणा से ओतप्रोत है। वे हिन्दी साहित्य जगत के सजग प्रहरी एवं संस्कृतिकर्मी तो माने ही जाते हैं, उनके व्यक्तित्व का एक रोचक पहलू यह भी है कि उन्होंने जीवन को सरसता से जिया। उनके स्वभाव में कुटज पुष्प की जिजीविषा देखने को मिलती है, जो रेगिस्तान की विपरीत परिस्थितियों में भी खुलकर मुस्कुराता रहता है। भीष्म साहनी ने अपने जीवन-काल में जो उतार-चढ़ाव देखे, उन्हीं को अपने साहित्य में लिपिबद्ध किया। उन्होंने सामाजिक उत्थान, मानव-मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं को अपने लेखन का मुख्य प्रतिपाद्य बनाया। मध्यवर्गीय मानसिकता व मानव-मूल्यों की भावनापूर्ण व पारिवारिक सहिष्णुता का जो रूप उनकी कहानी ''चीफ की दावत'' में देखने को मिलता है, वह प्रायः कहीं नहीं। परिवार के मुखिया (बेटे) द्वारा अपने बॉस को खुश करने के लिये किये जाने वाले प्रयासों में स्वार्थ-सिद्धि के चलते किस प्रकार बूढ़ी और निरीह माँ, महत्वपूर्ण अवलम्ब बन जाती है, यह इस रचना की विशेषता है। माँ का बेटे के प्रति वात्सल्य इस कहानी की पराकाष्ठा है, जिससे रचना सजीव हो उठी है। इस कहानी के माध्यम से उन्होंने मानव मूल्यों को झकझोर कर रख दिया। भीष्म जी के बारे में मानना है कि वे मार्क्सवादी विचारधारा के प्रतिमान तो थे ही, पुण्यश्लोक व्यक्तित्व की पहचान भी थे। प्रायः सामान्य से प्रतीत होने वाले विषयों को भी रोचकता का पुट देते हुए सच्चाइयों का पर्दाफाश करने का तेज उनकी लेखनी की धार में विद्यमान था।

भीष्म जी के व्यक्तित्व के विविध रंग थे। वे एक सफल कलाकार, साहित्यकार व अध्यापक थे। कलाकार के रूप में उन्होंने सईद मिर्जा की फिल्म 'मोहन जोशी हाजिर हो' में शानदार अभिनय कर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा लिया। उपन्यासकार के रूप में 'तमस' से उन्हें अभूतपूर्व ख्याति मिली। कहानीकार के रूप में 'चीफ की दावत' जैसी चिरस्मरणीय कहानी उनकी साहित्यिक ओजस्विता की परिचायक है। इसी प्रकार, दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज में अध्यापक के रूप में उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उनकी प्रमुख नाट्य कृतियाँ 'वसंती' (1980), 'मैय्यादास की माड़ी' (1988) और 'कुंतो' (1993) हैं। उनका आखिरी उपन्यास 'नीलू नीलिमा नीलोफर' था। यह उपन्यास भी सांप्रदायिक मसले को लेकर लिखा गया है।

दूरदर्शन पर 'हम लोग', 'बुनियाद' और 'निर्मला' जैसे लोकप्रिय धारावाहिकों के अलावा जो धारावाहिक अत्यन्त लोकप्रिय हुआ, वह 'वसंती' ही था। यह उपन्यास 1980 में लिखा गया।

भीष्म साहनी की आत्मकथा 'आज के अतीत' शीर्षक से प्रकाशित हुई है। इस कृति में लेखकीय ईमानदारी का सहज उद्घाटन हुआ है और पाठकों एवं आलोचकों के बीच इसे व्यापक स्वीकृति मिली है। जीवन की सच्चाइयों से रूबरू होते हुए इसमें उन्होंने लिखा–''कभी-कभी सोचता हूँ कि जिन्दगी में मैंने अपनी इच्छाओं से विवश होकर कोई भी दो टूक फैसला नहीं किया, मैं स्थितियों के अनुरूप अपने को ढालता रहा हूँ। अन्दर से उठने वाले आवेग और आग्रह तो थे, पर मैं उन्हें दबाता भी रहता था। मैंने किसी आवेग को जुनून का रूप लेने नहीं दिया। मैं कभी भी यह करने की स्थिति में नहीं था कि जिन्दगी में यही मेरा रास्ता है। इसी पर चलूँगा।''

इसके अलावा, उन्होंने यह भी लिखा– ''कभी-कभी सोचता हूँ, यदि साहित्य-सृजन जीवन की सच्चाई की खोज है, तो जीवन के अनुभव इस खोज में सहायक ही होते होंगे। इस तरह जीवन के अनुभवों को गौण तो नहीं माना जा सकता। इन अनुभवों से दृष्टि भी मिलती है, सूझ भी बढ़ती है, लेखक के संवेदन को भी प्रभावित कर पाते होंगे। मैं इस तरह की युक्तियाँ देकर अपना ढाढ़स बँधाता रहता था।'' इस कथन की छाप हमें उनकी रचनाओं में भी देखने को मिलती है, जो एक सुखद पहलू है।

भीष्म साहनी साहित्य अकादमी पुरस्कार (1975) के अलावा, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, अफ्रो-एशियाई लेखक पुरस्कार और पद्मभूषण (1998) से भी नवाजे गए।

भीष्म जी ने अपने साहित्य में मानव-मूल्यों को अभिव्यंजित और प्रतिष्ठित किया और उनमें गहन आस्था व्यक्त की। मात्र इसके चलते उन्होंने हिन्दी साहित्य के भीष्म की संज्ञा से सहज ही विभूषित किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य जगत की स्वार्थ-संकुल परिस्थितियों में भी भीष्म जी ने साहित्य-सृजन की प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी और वैचारिक दृढ़ता एवं प्रतिबद्धता के साथ जीवन में कभी कोई समझौता नहीं किया। गतिशील रचनाकार, लेखक और नाटककार के रूप में वे चिरस्मरणीय रहेंगे। ❑❑❑

सिडबी
भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

समय-समय की बात

● स्वाती आठल्ये,
मुम्बई कार्यालय

अभिनेता सलमान खान ने अपने एक साक्षात्कार में एक प्रश्न के जवाब में यह बात कही थी, कि "मैं तो वही हूँ, मेहनत भी पहले जैसे करता था, वैसे ही अब भी करता हूँ। सफलता अब मिल रही है, यह तो समय का करिश्मा है।"

यह समय हम सबके जीवन से कितना जुड़ा है, इसकी महत्ता हम आम तौर पर निजी जिंदगी में कम ही समझ पाते हैं। समय के दायरे में ही हम सब जीते हैं, जी सकते हैं, और बचपन से ही इस 'समय' का खयाल रखने की नसीहतें हमें दी जाती हैं। समय पर उठना, समय पर सोना, समय पर पढ़ना, समय से खाना आदि कई सूचनाओं के जरिए समय-समय पर हम सभी को समय का स्मरण कराया ही जाता है। परंतु सच कहें तो हम जाने-अनजाने में तथा जिंदगी की भाग-दौड़ में उलझकर समय की परवाह किए बिना उसे अधिकतर गँवा ही देते हैं, और फिर पछताते हैं, समय की कमी का रोना रोते हैं। 'काश समय होता तो मैं कितना कुछ करता!,' कहां से कहां पहुंच जाता!' यह कहकर अफसोस जताने लगते हैं। कई बार हम यह भी सोचते हैं कि 'समय' हमारे साथ होगा तो सफलता, कामयाबी हमारे कदम चूमेगी। वहीं अगर हम असफल हो जाएँ, तो नसीब के साथ-साथ समय को भी कोसते हैं। मानो 'समय' ही सबके लिए जिम्मेदार है।

हम यह भी कहते या सुनते रहते हैं कि "समय बदल रहा है" या "समय के साथ चलो।" क्या सचमुच समय बदलता है, या हम बदलते हैं? बदलाव/परिवर्तन तो निरंतर होता ही रहता है। पर वह तो हमारे अपने आहार-विहार, रहन-सहन, आचार-विचार में परिवर्तन लाने से होता है, समय तो बदलता नहीं। हम ऐसा भी कहते हैं कि 'समय' ने करवट ली, तो आदमी की नीयत भी बदल गई है। और वह पर्यावरण का विनाश करते हुए विकास कर रहा है। सच पूछें तो समय कैसे करवट लेता है, यह तो पेचीदा सवाल होगा ना !

कभी-कभी हम चाहते हैं कि वक्त ठहर जाए। हम समय को धीरे-धीरे चलने के लिए कहते हैं, और वह है कि चुटकियों में बीत जाता है। तब हम अफसोस करते हैं। इसके विपरीत कई बार हम चाहते हैं कि समय जल्द से जल्द बीत जाए। विपरीत और कठिन परिस्थितियों में होने पर समय काटे नहीं कटता। अच्छे दिनों में, आनन्द के क्षणों में जिस समय को हम रोक लेना चाहते थे वही समय दुःख के दिनों में हमें काटने को दौड़ता है। एक-एक पल पहाड़ की तरह लम्बा हो जाता है।

मुंबई जैसे महानगर में घड़ी की सुइयों के साथ-साथ "समय" को भी शायद दौड़ना पड़ता है। कई छोटी-छोटी बातों के लिए भी समय निकालना कइयों को नामुमकिन-सा लगता है। तभी तो ऐसी पंक्तियों के द्वारा "समय" तथा 'वक्त' का जिक्र किया जाता है -"दिन-रात दौड़ती दुनिया में, जिन्दगी के लिए ही समय नहीं" या फिर "हर खुशी है लोगों के दामन में, पर इक हँसी के लिए वक्त नहीं" तथा "सारे नाम मोबाइल में हैं, पर दोस्ती के लिए वक्त नहीं" या फिर "गैरों की क्या बात करें, जब अपनों के लिए ही वक्त नहीं", "आँखों में है नींद बड़ी, पर सोने को ही वक्त नहीं"। एक सुविचार तो यह भी है कि हमारे पास प्रचुर मात्रा में अगर कुछ है तो वह है "समय"। पर हम तो अकसर बस समय की कमी का ही बखान करते रहते हैं। कई बार हम "सांस लेने की या मरने की भी फुरसत नहीं" कहकर समय की कमी का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी करते हैं।

'समय' का वास्ता देकर हमारे कई बुजुर्ग भी समय-समय पर वर्तमान समय पर टीका-टिप्पणी करते रहते हैं। आज के समय की आलोचना करके वे अपने 'उस' पुराने समय की मधुर यादों में डूबे रहते हैं। वे रट लगाए रहते हैं कि पुराने समय में कितना सुकून था। कहते हैं कि समय का पहिया निरंतर चलता रहता है। इसलिए हमें चाहिए कि समय के रहते हम सद्कर्म और पुण्यकर्म कर संचित करें, ताकि जन्म-मृत्यु के चक्करों से भी छुटकारा पा सकें, क्योंकि समय जब हाथ से निकल जाता है तो वापस नहीं आता। किसी ने ठीक ही कहा है "इंतजार मत कीजिए, पूरी तरह उपयुक्त समय कभी नहीं आता।" इसलिए जो समय हमारे पास है, उसी को उचित समझकर अपने कामों को अंजाम देने में ही समझदारी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिंदगी में "समय" पर जिंदगी के हर पड़ाव को सफलतापूर्वक पार करने की तमन्ना रखता है। वह चाहता है कि समय पर ही उसकी

अभिलाषाएं और जिम्मेदारियां पूरी हो जाएं और समय पर ही वह दुनिया से चला जाए। जीवन की यथार्थता, सफलता के मापदंड की व्याख्या वह यही मानता है। तब समाज भी उसकी गणना किस्मतवालों में करता है। प्रकृति की बात करें तो अगर समय पर बारिश नहीं होती है, और असमय वर्षा होती है, तो कितने संकटों का सामना करना पड़ता है, कितनी हानि होती है, यह तो हम देख ही रहे हैं। निसर्ग-चक्र भी समय से चले, तो ही दुनिया में अमन और सुकून बना रहेगा।

समय बलवान होता है। चाहे राजा हो या रंक। उसकी चपेट में आ जाने से सब कुछ पल भर में तहस-नहस हो जाता है। इतनी शक्ति उस में है। समय जैसा अच्छा वेदनाहारी और कुछ भी नहीं। बड़े से बड़े दुःख से उबरने में भी समय ही सबसे बड़ा मददगार साबित होता है। "समय" एक मरहम की तरह मानवीय पीड़ा, वेदना को कम करके उसे पुनः खड़ा होने की शक्ति प्रदान करता है।

अगर हम समय पर 'समय' का विचार कर अपने सारे करणीय कृत्य करें तो हमारा भला होगा। यही समय की चेतावनी है।

❑❑❑

कहानी

एकलव्य

● ललाटेन्दु स्वाईं
जयपुर क्षेका

मेरी मां स्कूल में आया की नौकरी करती थी। उसकी पिता महीने की पगार 1000 रुपए थी। मेरे पिता मजदूरी करते थे और जो भी कमाते थे, वह शराब और जुए में उड़ा देते थे। न सर पर कोई छत थी, न पहनने को ढंग के कपड़े। कभी-कभी तो मुझे भूखे पेट ही सोना पड़ता था। आज किसी पुल के नीचे तो कल किसी पाइप में रात गुजरती थी।

इसलिए मां जब भी काम पर जाती थी, मुझे अपने साथ ले जाती थी। मुझे स्कूल जाना भी बहुत अच्छा लगता था। सारे बच्चों को पढ़ते देख मेरा भी बहुत मन करता था पढ़ने को। मास्टर जी जो भी पढ़ाते थे, मैं क्लास के बाहर खड़ी होकर छुपछुप कर सुनती थी। गणित के प्रति मेरा एक विचित्र आकर्षण था। मास्टरजी जब भी बच्चों को कोई प्रश्न देते थे, मुझे उनके उत्तर ढूंढ़ने में बड़ा मजा आता था। एक दिन मैं ऐसे ही कक्षा के बाहर छिपकर खड़ी थी। उस दिन मास्टरजी ने बच्चों को कुछ प्रश्नों का हल निकालने को कहा और यह भी कहा कि जो इन सभी प्रश्नों के सही उत्तर देगा, उसे राष्ट्रीय गणित प्रतियोगिता में हिस्सा लेने का मौका मिलेगा। कुछ समय बाद मास्टरजी ने सारे बच्चों के उत्तर पत्र देखे। वे बहुत दुखी होकर बोले कि इस कक्षा में एक भी विद्यार्थी ऐसा नहीं है जिसने सारे प्रश्नों के उत्तर सही दिए हों। वे बहुत उदास और दुखी हो गए और अपने आप को दोष देने लगे। मुझे बहुत बुरा लगा, क्योंकि मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा था। मैं साहस बटोरकर उनके सामने आई और उनसे कहा कि मैं इन सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकती हूँ। उन्होंने हैरान होकर पूछा कि तुम कौन हो? मैंने उन्हें बताया कि मैं उनके स्कूल में काम करने वाली आया की बेटी हूं और रोज छुप-छुप कर उन्हें पढ़ाते हुए सुनती हूँ। उन्होंने मुझे प्रश्नों का हल निकालने का मौका दिया। जब मैंने सारे प्रश्नों का सही उत्तर दिया, तो वह अत्यंत गर्वित महसूस कर रहे थे। उन्होंने कहा : तुम मेरी एकलव्य हो। पर मैं तुम्हारा अंगूठा नहीं मांगूंगा। मैं तुम्हें पढ़ाई का मौका दूंगा। तुम्हारी पढ़ाई का सारा खर्चा मैं वहन करूंगा। उस दिन मेरा पढ़ने का सपना हकीकत में बदल गया।

❑❑❑

कविता

बारिश

● संजय शुक्ला
रायपुर कार्यालय

जमीन जल चुकी है,
असमान अभी बाकी है,
दरख्तों देख के चलो,
तुम्हारा इम्तिहान अभी बाकी है,
वो जो खेतों की मेड़ों
पर उदास बैठे हुए हैं,
उन्ही की आँखों में
अब तक ईमान बाकी है,
बादलों समय पर बरस जाना इस बार,
सूखी जमीन पर,
किसी का मकान गिरवी है,
और किसी का लगान बाकी है.

❑❑❑

प्रदूषण और पर्यावरण : बच्चों की नज़र से

अदिति गुप्ता, जयपुर

एस कौशिक, जयपुर

तनिष्क सहयोगी, जयपुर

सार्थक गुप्ता, जयपुर

सार्थक महावर, जयपुर

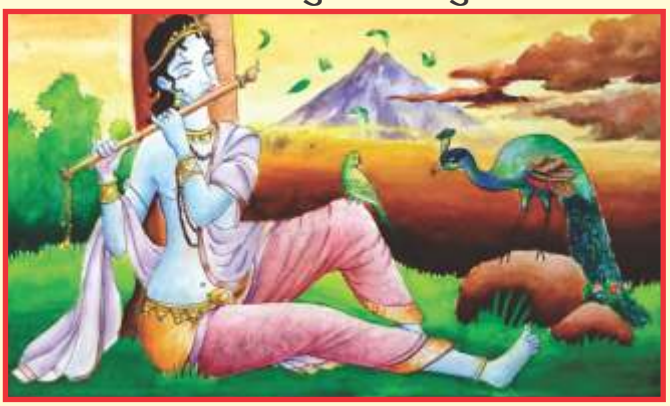

मेमॉय मिश्रा, भुवनेश्वर

ईशान स्वाईं, जयपुर

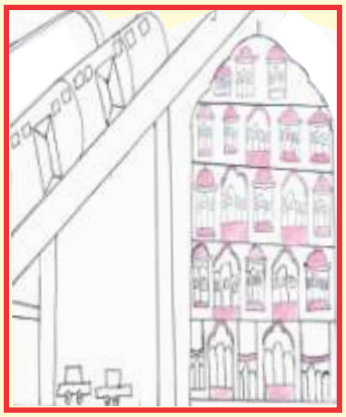

नम्रता महावर, जयपुर

एस कार्तिकेयन, जयपुर

अब पर्यावरण–अनुकूल प्रौद्योगिकी से सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों को अतिरिक्त फ़ायदा मिलेगा।

आपकी विनिर्माण इकाई को पर्यावरण–अनुकूल बनाने के लिए, हम ऋणों पर प्रतिस्पर्धी ब्याज दरें लेकर आए हैं। तो अब अपना लाभ बेहतर बनाएँ और प्रतिफल पाएँ।

सिडबी

भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

SIDBI <space> E2 CITY LOAN AMT को 575758 पर SMS कीजिए या लॉग ऑन कीजिए www.sidbi.com/directenergy.asp पर

सिडबी ने अपने डीप डिस्काउंट बांडस श्रृंखला–1 को ''मांग'' विकल्प का प्रयोग करके 01 फरवरी, 2002 को मोचित किया था। 01 फरवरी, 2002 के बाद इन बांडों पर कोई ब्याज देय नहीं होगा।